* श्री वीतरागाय नमः *

नय प्रमाण का थोकड़ा

प्रकाशक

हीरालाल माणकचन्द गोलछा

बीकानेर,

वीर संवत २४५४ प्रथमावृत्ति मूल्य

विक्रम संवत १९८४ सदुपयोग

निवेदन
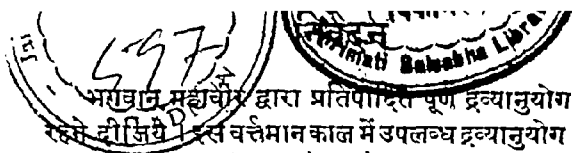
भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित पूर्ण द्रव्यानुयोग की बात रहने दीजिये। इस वर्तमान काल में उपलब्ध द्रव्यानुयोग सम्बन्धी शास्त्र भी अत्यन्त विस्तृत हैं। और फिर आजकल की बोल-चाल की भाषा में न होने से सर्वसाधारण उनका उपयोग नहीं कर सकते। इस दशा में द्रव्यानुयोग का ज्ञान प्राप्त करने के लिए सरल उपाय थोकड़ा है। थोकड़ा शास्त्र ज्ञान प्राप्त करने की कुंजी (Key) है। इससे सभी जिज्ञासु सरलता पूर्वक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इसी विचार से "नय प्रमाण का थोकड़ा" प्रकाशित किया गया है।

इस थोकड़े की भाषा विशुद्ध हिन्दी नहीं है। उस की शुद्धता पर ध्यान भी नहीं दिया गया है। कारण यह कि जिन लोगों ने प्राकृत के शब्दों से इसे याद किया है, उनके लिए शुद्ध हिन्दी अनुकूल नहीं पड़ती। उनकी जबान पर ऐसा ही बैठा होता है। अतः इसकी भाषा पर ध्यान न देकर भावों की ही ओर ध्यान देने की कृपा करें।

इस थोकड़े के शुद्ध करने में लींबड़ी सम्प्रदाय के श्रीमान् १००८ श्री शतावधानी मुनिश्री रत्नचन्द्रजी महाराज श्रीमान् १००८ श्री उपाध्याय आत्मारामजी महाराज और परम-प्रतापी श्रीमान् १००८ पूज्यश्री हुक्मीचन्द्रजी महाराज की सम्प्रदाय के आचार्य १००८ श्री पूज्य जवाहिरलालजी महाराज के सुशिष्य १००७ श्री पंडितरत्न घासीलालजी महाराज से बहुत सहायता मिली है। अतः इन सब महानुभावों का आभार मानते हैं।

आशा है पाठकगण इससे लाभ उठाकर कृतार्थ करेंगे।—

निवेदक—

भैरोंदान जेठमल सेठिया

बीकानेर
२१-१-२८ ई.

विषयसूची

सात नयों का थोकड़ा

वी   म्य   वंज्ञं, गौत   गणिनं तथा ।
नां   ते व्याख्या, स्वार   नु   हहेतवे ॥१॥

श्री   नुयोग   र सूत्र में स   नयों का अधि   र चला है वह इक्कीस द्वार कर के अनेक   ल में वर्णित है उस अधिकार को कहते हैं—

२१ द्वारों   ना ।

१ नयद्वार, २ निक्षेप   र, ३ द्रव्यगुणपर्याय, ४ द्रव्यक्षेत्र   लभाव, ५ द्रव्यभाव, ६   र   र्य, ७ नि   व्यवहार, ८ उपादान तथा निमित्त   , ९ प्रमाण ४, १० गुणागुणी, ११ सामा   शेष, १२ ज्ञे   नी, १३ उत्पादव्ययध्रुव, १४   धाराधेय, १५   भावतिरोभाव, १६   रूपता और

पाता, १७ उत्सर्गापवाद, १८ त्मा ३, १९ ध्यान ४, २० नुयोग ४, २१ ज रणा ३।

थ नयद्वार के अन्तर्द्वार (भेद) ११.

१ नामद्वार, २ शब्दार्थद्वार, ३ स्वरूपद्वार, ४ ल णद्वार, ५ भेदद्वार, ६ दृष्टान्तद्वार, ७ नयावतारद्वार, ८ द्रव्यार्थिक यार्थिकद्वार, ९ सप्तभङ्गीद्वार, १० सात नयों के ७०० भेद द्वार, ११ निश्चयव्यवहारद्वार।

अन्तर्द्वारों में—१ ना द्वार.

सात मूलनयों के नाम कहते हैं- १ नैगमनय, २ संग्रहनय, ३ व्यवहारनय, ४ ऋजुसूत्रनय, ५ शब्द-नय, ६ समभिरूढनय, ७ एवंभूतनय।

२ शब्दार्थद्वार.

प्रथम नय शब्द का अर्थ लिखते हैं—जो वस्तु के संपूर्ण अंश का ज्ञान करानेवाला हो उस को प्र ण कहते हैं, थवा जो समस्त वस्तु को परिच्छिन्न याने भिन्न २ करे संशय विमोह और विभ्रम से रहित वर

की जैसी की तैसी स्थापना करे वही प्रमाण कहा जाता है, उस प्रमाण के दो भेद हैं—सविकल्प और निर्विकल्प। जो इन्द्रियद्वारा प्रवर्त्तने वाले मति श्रुत अवधि मनःपर्यय ज्ञान स्वरूप हो वह सविकल्प है और जो इन्द्रियातीत केवलज्ञान रूप हो वह निर्विकल्प है। इस प्र र प्रमाण के अर्थ जानना। और जो इसी प्रमाण के द्वारा गृहीत (ग्रहण की हुई) वस्तु के एक अंश का ज्ञ कराने वाला हो उस को नय कहते हैं। अथवा ज्ञाता (जानने वाले) का जो अभिप्राय है वही नय कहा जाता है और नाना स्वभाव से लेकर वस्तु को एक स्वभाव में स्थापित करे उसको तथा वस्तु के एक देश को जानने वाले ज्ञान को नय कहते हैं।

७ नयों के लक्षण—

जो विकल्प से संयु हो वह नैगमनय १। जो अभेदरूप से वस्तु को ग्रहण करे वह संग्रहनय २। जो

१– इसके अन्य स्थल में ऐसे भी लक्षण कहे हैं, जैसे– एक वचन में एक अध्यवसाय उपयोग में ग्रहण आवे उस का सामान्य रूप पने सर्व वस्तु को ग्रहण करे वह संग्रह नय, अथवा सब भेदों को सामान्य पने ग्रहण करे वह संग्रहनय, अथवा 'संगृह्यते इति संग्रहः' जो समुदाय अर्थ ग्रहण करे वह संग्रहनय कहा जाता है।

ह (ग्रह) नय से जिस जिस अर्थ को ग्रहण किये उन्हीं थों के भेद करके वस्तु का फै व करे वह व्यवहार ३। जो रल भांति सूचना करे वह - नय ४। जो ब्द व्याकरण से प्र तिप्रत्यय द्वारा सिद्ध हो वह ब्दनय ५। जो शब्द में भेद होते ए भी का भेद नहीं हो जैसे- इन्द्र पुरन्दर ादि, वह मभिरूढ नय ६। ौर जो ि पा के प्रध पने से हो वह एवंभूत नय ७ कहा जा है।

३ स्वरूपद्वार.

(नैगम नय)

(१)

नैगमनय वाला पदार्थ को सामान्य, विशेष तथा त्मक मानता है, तीन काल की बात न है और निक्षे चार मानता है। नैगम नय का यह है कि- नहीं है एक (विकल्प) जिस के अर्थात् नेक सान मान और प्रमा करके व को माने वही नैगम क जाता है।

(संग्रह नय)

(२)

संग्रह नय वाला पदार्थ को सामान्य न है विशेष नहीं, तीन ल की बात मान है, निक्षेपा र मान है, संग्रह संग्रह में वस्तु ग्रहण करे, इस पर दातून दृष्ट , जैसे- वि गी साहूकार ने पने अनुचर (दास) को कहा कि दातून ओ, तब वह दास 'दातून' ऐसा शब्द सुनकर दातून गी (दन्त-मञ्जन) कूंची जिभी झारी काच क । रूमाल पोशाक अलं र, इत्यादि दातून की सब मग्री ले या। इस प्रकार संग्रह नय वाला एक शब्द में नेक वस्तु को ग्रहण करे जैसे को कहे पर वन में वस्तुएँ अनेक हैं।

(व्यवहार नय)

(३)

व्यवहार नय वाला पदार्थ विशेषसहित न्य नता है, तीन काल की बात न है, निक्षेपा चार मानता है, तथा जो वस्तु विवेचन करे ति भेद करे उस को व्यवहार कहते हैं, जैसे-जीव के दो

भेद--सिद्ध और संसारी, सिद्ध के दो भेद--अनन्तर सिद्ध और परम्परसिद्ध, संसारी जीव के भी दो भेद-सयोगी(१३ वें गुणठाणवाले)और अयोगी(१४ वें गुण-ठाणवाले),सयोगी के दो भेद--छद्मस्थ और केवली(१३वें गुणठाणवाले),छद्मस्थ के दो भेद--सकषायी छद्मस्थ और अकषायी छद्मस्थ, अकषायी छद्मस्थ के दो भेद--उपशान्तकषायी छद्मस्थ (११ वें गुणठाणवाले) और क्षीणकषायी छद्मस्थ(१२ वें गुणठाणवाले), सकषायी छ स्थ के दो भेद--सूक्ष्मसम्पराय(१० वें गुणठाण)वाले और बादरसंपराय वाले, बादरसम्पराय वाले के दो भेद-- प्रमादी और अप्रमादी (७ वें ८ वें ९वें गुण-ठाणवाले), प्रमादी के दो भेद-- सविरति और अविरति, विरति के दो भेद-- सर्वविरति साधु (छठेगुणठाण-वाले) और देशविरति श्रावक (५ वें गुणठाणवाले), रति के दो भेद-- अविरतिसम्यग्दृष्टि(चौथे गुण-ठाणवाले) और अविरति मिथ्यादृष्टि (पहलेगुणठाण-वाले) दूसरे तीसरे गुणठाणवाले को भी मिथ्यात्व की क्रिया लगती है इसलिए वे भी मिथ्यादृष्टि के सामिल गिनेगये हैं । मिथ्यादृष्टि के दो भेद-- भव्य (ि नयोग्य) और अभव्य (क्तिगमन के अयोग्य)

भव्य के दो भेद—ग्रन्थि भेदी (ग्रन्थिरहित) और ग्रन्थि-भेदी (ग्रन्थिसहित)। इसी रीति से पुद्गल के भी दो भेद मानते हैं—पर णु और स्कन्ध, स्कन्ध के दो भेद—जीवसहित और जीवरहित, जीवसहित स्कन्ध के दो भेद--सूक्ष्म स्कन्ध और बादर स्कन्ध। इत्यादि भिन्न २ विवेचन करे उस को व्यवहारनय कहते हैं।

(ऋजुसूत्र नय)

(४)

ऋजुसूत्र नय वाला पदार्थ को सामान्य नहीं मानता है विशेष मानता है, निक्षेपा चार मानता है, वर्त्तमान काल को मुख्य कर के वस्तु मानता है, जैसे किसी ने कहा कि सौवर्ष पहले वर्ण की वृष्टि हुई थी तो इस नय वाला कहता है कि निरर्थक, तथा सौवर्ष पीछे सुवर्ण की वृष्टि होगी, तो भी निरर्थक। ऐसे ऋजु-सूत्र नय वाला वर्त्तमान काल को मुख्य कर के वस्तु मानता है, जिस पर साहूकार के बेटे की बहू का दृष्टान्त-- जैसे कोई साहूकार अपने मकान की पौषध-शाला में सामायिक करके बैठा था उस वखत किसी दूसरे पुरुष ने आकर उस के बेटे की बहू को पूछने लगा कि म्हारे ससराजी कहां गये हैं ? तो वह बेटे की

वह बोलती है कि रे सरेजी पंसारी बाजार में सूंठ र्चे विगेरे खरीदने को गये हैं, तब उस पुरुष ने पं री बा र में जाकर सेठजी की तला की र वहां नहीं पाये तो पीछा आकर फिर पूछता है कि बाई! वहां तो सेठजी नहीं मिले सच बताइये कि सेठजी कहां गये हैं? तब वह बोलती है कि रे स-रेजी मोची के यहां जूते खरीदने को गये हैं, तब उस पुरुष ने मोचियों के बाजार में ज र तला की तो वहां भी सेठजी नहीं पाये तब पीछा वहां या तो इतने में सेठजी को यिक पूरी हो गई थी, सेठजी ामायिक पारकर उस पुरुष से मिले ौर त चीत कर उस को सीख दी ौर बेटे की बहू से ह लगे कि बहू! तूं जानती थी के ससराजी ामा-यिक लेकर बैठे हैं तो फिर नाहक इतना झूंठ क्यों बोली? तब उ व ऐसा उत्तर दिया कि ाप का उ ब त पंसारी के यहां तथा मोची के यहां गया था इ लिए मैने उ पुरुष से ा कहा। इस प्रकार नय वाला वर्त्तमान काल को रूप र बं को मानता है।

(शब्दनय)
(५)

शब्द नय वाला पदार्थ को सामान्य नहीं मानता है विशेष मानता है, वर्त्तमान काल की बात मानता है, निक्षेप १ भाव मानता है, सदृश शब्दों एक ही अर्थ मानता है, लिङ्ग और शब्द में भेद नहीं मान है जैसे शक्र पुरन्दर, शचीपति, देवेन्द्र, सब को एक मानता है।

(समभिरूढ नय)
(६)

समभिरूढ नय वाला पदार्थ को सामान्य नहीं मानता है विशेष मानता है, वर्त्तमान काल की बात मानता है निक्षेप १ भाव मानता है, सदृश शब्दों को भिन्न भिन्न अर्थ मानता है, लिङ्ग और शब्द में भेद मानता है जैसे शक्रेन्द्र-- जब शक्रासन पर बैठा हुआ अपनी शक्ति द्वारा देवताओं को आज्ञा मनाता है वखत वह शक्रेन्द्र है। पुरन्दर--जब वज्र हाथ में लेकर वैरी देवताओं के पुरको विदारे (नाश करे) उस वखत वह पुरन्दर है। शचीपति-- जब इन्द्राणियों की

में बैठा । रंग राग नाटक चे देखे इन्द्रि-
यजन्य खों का अनुभव करे उस वखत वह शची-
पति है। देवेन्द्र–जब देवताओं की सभा में बैठा हुआ
न्याय (इन्साफ़) करे उस समय वह देवेन्द्र है। ऐसे
मभिरूढनयवाला शब्द पर आरूढ होकर सदृश शब्दों
। भिन्न भिन्न अर्थ ग्रहण करता है। अथवा किञ्चिद्
वस्तु को भी संपूर्ण वस्तु मानता है, जैसे–तेरहवें
चौदहवें गुणठाणावाले केवली भगवान् को भी सिद्ध
। है।

(एवंभूत नय)

(७)

एवंभूतनयवाला पदार्थ को सामान्य नहीं मानता
है विशेष मानता है, वर्त्तमान काल की बात मानता है
नि ेप १ भाव मानता है, सदृश शब्दों का उपयोग-
हित भिन्न भिन्न अर्थ ग्रहण करता है, जैसे शक्रेन्द्र–
ासन पर बैठा हुआ अपनी शक्ति से उपयोग-
हित देवताओं को आज्ञा मनावे उस वखत वह
शक्रेन्द्र है शेष पूर्ववत्। इस एवंभूत नय में उपयोग-
हित क्रिया की ख्यता है। इस नयवाला जो वस्तु
अपने णों में संपूर्ण हो और अपने गुणों की यथावत्

क्रिया करे उसी को पूर्ण वस्तु कहता है, जैसे पानी से भरा हुआ स्त्री के शिरपर जलाहरणरूप चेष्टा कर हुआ हो उसी समय उस को घट (घडा) कह है किन्तु घर के कोने में पड़े हुए घट को घट नहीं म है, ऐसे ही जब जीव सब कर्मों का क्षय कर के त्तिक्षत्र में विराजमान हो तब ही उस को सिद्ध कहता है।

४ लक्षणद्वार.

णेगेहिं माणेहिं मिणइत्ति णेगमस्स य निरुत्ती।
सेसाणंपि नयाणं, लक्खणमिणमो णह वोच्छं ॥१॥
संगहिअपिंडिअत्थं, संगहवयणं समासओ विंति।
वच्चइ विणिच्छियत्थं, ववहारो सव्वदव्वे ॥२॥
पच्चुप्पन्नग्गाही, उज्जु ओ णयविही मुणेयव्वो।
इच्छइ विसेसियतरं, पच्चुप्पण्णं णओ सद्दो ॥३॥
वत्थूओ संकमणं, होइ अवत्थू नए समभिरूढे।
वंजण-अत्थ-तदुभयं, एवंभूओ विसेसेइ ॥४॥

(अनुयोगद्वारसूत्र)

१ नैगम नय सामान्य विशेष तथा उभय प्रधान वस्तु को मानता है। २ संग्रहनय सामान्य प्रधान वस्तु को मानता है यथा सत् जगत्। ३ व्यवहारनय विशेष

प्रथ लोकरूढ वस्तु को मानता है। ४ ऋजुसूत्र नय वर्तमान कालविषयक वस्तु को मानता है, अतीत नागत काल विषयक वस्तु को नहीं मानता है। ५ शब्दनय काल लिङ्ग और वचन वगैरह के भेद से वस्तु को भिन्न भिन्न मानता है, अभूत् भवति भविष्यति. तटः तटी तटं. देवः देवौ देवाः, इन के लिङ्ग तथा वचन भेद होने से वस्तु को भी भिन्न२ प्रकार से मानता है। ६ समभिरूढ नय व्युत्पत्ति के भेद से वस्तु को भिन्न भिन्न मानता है, यथा इन्दनात् इन्द्रः, शकनात् :, पुरदारणात् पुरन्दरः, इस प्रकार यह नय इन्द्र पुरन्दर इन शब्दों को व्युत्पत्ति की प्रधानता से भि नता है। ७ एवंभूत नय क्रियाविशिष्ट वस्तु को ही वस्तु तरीके मानता है यथा इन्दनक्रिया में परिणत होने से इन्द्र. पुरदारण में प्रवृत्त होने से पुरन्दर मानता है। क्रियारहित काल में इन्द्रादि शब्दों को इन्द्र शक्र पुरन्दर तरीके नहीं मानता है। समभिरूढ नय में क्रिया करो अथवा न करो परन्तु व्युत्पत्ति र्थ होना चाहिये, और एवंभूत नय में क्रिया रूप होनी चाहिये, इन दोनों में केवल इतना ही भेद है। इन नयों के लक्षणों विशेष विवरण अन्य स्थल से नलेना।

५ भेद द्वार

(नैगमभेदाः)

नैगमनय के तीन भेद हैं- अंश, आरोप और संकल्प, और विशेषावश्यक में चौथा उपचरित भेद भी कहा है।

अंश नैगम के दो भेद हैं- भिन्नांश और अभिन्नांश, इनमें से स्कन्धादिक के जुदे अंश को भि कहते हैं और अविभाग गुण को अभि ंश कहते हैं।

आरोप नैगम के चार भेद हैं- द्रव्यारोप, गुणारोप, कालारोप और कारणारोप। १ द्रव्यारोप- वास्तव में द्रव्य तो न हो परन्तु उसमें द्रव्य का आरोप करना, जैसे काल को द्रव्य कहना। २ गुणारोप-- द्रव्य के विषय में गुण का आरोप करना, जैसे ' न' यह आत्मा का गुण है परन्तु जो ज्ञान है वही आत्मा है, इस तरह ज्ञान को ही आत्मा कहना। ३ कालारोप— इसके भी दो भेद हैं- भूत और भविष्यत्, भूत— जैसे दीपमालिका के दिन कहे कि आज श्री महावीर मी का निर्वाण है, यह वर्त्तमान काल में भूत(अतीत) ल का आरोप किया, भविष्यत्-जैसे आज श्री पद्मनाभ प्र- का जन्म कल्याणक है, यह वर्त्तमान काल में भविष्यत्

(अनागत)काल का आरोप किया, जैसे वर्त्तमान काल के
।थ दो भेद कहे हैं इसी तरह भूत और भविष्यत् काल के
साथ भी दो दो भेद होते हैं, एवं कालारोप के ६ भेद
अन्यस्थल से जानलेवें। ४ कारणारोप— कारण चार प्रकार
का है— १उपादानकारण, २असाधारण कारण, ३निमित्त
कारण, और ४ अपेक्षाकारण। इन में जो निमित्त- रण
है उस निमित्त में जो बाह्य क्रिया अनुष्ठान द्रव्य साधन
।पे अथवा देव और गुरु ये सब धर्म के निमित्त
कारण हैं सो इन को ही धर्म कहना, जैसे श्री वीतराग
ज्ञ देव परमात्मा भव्य जीवों को आत्म-स्वरूप
दिखाने के लिए निमित्त रण है सो उस निमित्त
कारण को ही भक्तिवश होकर भव्यजीव कहते हैं
कि हे प्रभो ! तूं हमारे को तार तूं ही तरण तारण है,
ऐ जो कहना सो निमित्त रण में उपादान कारण
रोप करना है। वैसे ही पेक्षा कारण में
निमित्त कारण का आरोप करना, जैसे शुद्ध ।हा-
रादि को ज्ञान का निमित्त रण कहना। साधा-
रण कारण में उपादान कारण का आरोप करना,
जैसे ज्ञान क्षयोपशम अथवा क्षय असाधारण
रण है उसी को ज्ञानस्वरूप आत्मा कहना अर्थात्
स्त ोप मवाले को प्रशस्त ज्ञान वाला कहना।

अपेक्षा कारण में उपादान कारण का आरोप करना जैसे मुनि के पात्रादि उपकरण को चारित्र (संयम) का आधार कहना, इसी का नाम कारणारोप है।

संकल्प नैगम के दो भेद होते हैं- स्वयंपरिणामरूप और कार्यरूप। स्वयंपरिणामरूप- जो वीर्य चेतना का संकल्प होना, इस जगह जुदा २ क्षय और उपशम भाव लेना है। दूसरा कार्यरूप- जैसा२ कार्य हो वैसा २ उपयोगहो,जैसे मिट्टी का करवा बना उस समय करवे उपयोग और ढकनी बनी उस समय ढकनी का उपयोग।

(संग्रह नय)

संग्रह नय के दो भेद हैं-सामान्यसंग्रह और विशेपसंग्रह। सामान्यसंग्रह के भी दो भेद हैं-मूलसामान्यसंग्रह और उत्तरसामान्यसंग्रह। मूलसामान्यसंग्रह के अस्तित्व १ वस्तुत्व २ द्रव्यत्व ३ प्रमेयत्व ४ प्रदेशत्व ५ और अगुरुलघुत्व ६, ये छह भेद हैं और उत्तरसामान्यसंग्रह के दो भेद हैं-जातिसामान्य और समुदायसामान्य। जातिसामान्य-जो एक जातिमात्र को ग्रहण करे। समुदायसामान्य-जो समुदाय अर्थात्

याने सब को ग्रहण करे । यह उत्तरसामान्य चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन को ग्रहण करता है, और पूर्वो जो मूलसामान्य है वह अवधि दर्शन तथा वल दर्शन को ग्रहण करता है । अथवा इस सामान्य विशेष का ऐसा भी अर्थ होता है कि द्रव्य ऐसा नाम लेने से सर्व द्रव्यों का संग्रह हो गया इसका नाम मान्य संग्रह है, और केवल एक जीवद्रव्य कहा तो वे जीवद्रव्य का संग्रह हो गया परन्तु जीव सब टल गये, इ का नाम विशेष संग्रह है ।

(व्यवहार नय)

व्यव र नय के दो भेद हैं—शुद्ध व्यवहार और अशुद्ध व्यवहार । शुद्ध व्यवहार के दो भेद हैं—वस्तुगततत्त्वग्रहणव्यवहार और वस्तुगततत्त्वजानन-व्यवहार । १ वस्तुगततत्त्वग्रहणव्यवहार—जो आत्म-तत्त्व र्थात् अपने निज स्वरूप को ग्रहण करे और परवर गत तत्त्व को छोड़े उस का नाम वस्तुगत-तत्त्वग्रहण व्यवहार है । दूसरा जो भेद वस्तुगततत्त्व-जाननव्यवहार है उसके भी दो भेद हैं—१ स्ववस्तुगत तत्त्व ननव्यवहार और २ परवस्तुगतत जानन-

व्यवहार। पहले भेद का अर्थ यह है कि-, स्व ने अपनी आत्मा का जो तत्त्व याने ज्ञान दर्शन रि वीर्य आदि अनन्तगुण आनन्दमय है, मेरा कोई नहीं और मैं किसी का नहीं हूँ, ऐसा जो अपने स्वरूप को जानना उस का नाम स्ववस्तुगततत्त्व ननव्य र है १। दूसरा भेद परवस्तुगततत्त्वजाननव्यवहार है उस के किसी अपेक्षा से तो एक ही भेद है और किसी अपेक्षा से चार अथवा पांच भेद भी हो सकते हैं, इन सब को एक साथ दिखाते हैं, जैसे धर्मास्ति य में चलन-सहाय आदि गुण (लक्षण) हैं और अधर्मास्तिकाय में स्थिर सहाय आदि गुण हैं, । में अवगाहनादि गुण हैं, पुद्गल में मिलन विखरन आदि गुण हैं और काल में नया पुराना गुण हैं, इत्यादिक। इन सब परवस्तुगतत को जानना उस का नाम परवस्तुगततत्त्वजाननव्यवहार है।

अन्य प्रकार से भी इस वस्तुगत व्यवहार के तीन भेद होते हैं सो भी दिखाते हैं- १ द्रव्यव्यवहार २ गुणव्यवहार और ३ स्वभावव्यवहार। द्रव्यव्यवहार उस को कहते हैं कि जगत् में जो द्रव्य (पदार्थ) हैं उन को यथार्थ जानें, इस द्रव्य व्यवहार के कहने से बौद्धादि मत का निराकरण होता है। दूसरे गुण

को ते हैं- जो गुण णी का मव सम्बन्ध है
को य थ ने और गुण गुणी के परस्पर भेद
ौर भेद दोनों को माने, इस गुणव्यवहार से वेदा-
न्त त । निराकरण हो है। तीसरा स व्यवहा-
र- द्रव्य में जो स्वभाव है उ को य थ जानें इस
स्वभावव्यवहार से नैयायिक मत का निराकरण होता है।
इसी शुद्धव्यवहार के अन्य प्रकार से भी दो भेद होते
हैं- ाधनव्यवहार ौर विवेचनव्यवहार, ाधन
व्यवहार उस को कहते हैं जो उत्सर्ग मार्ग से नीचे के
प को छोड़ें और ऊपर के गुणस्थान में श्रेणी
ारोहणरूप करके समाधि में होकर त्मर करे।
चनव्यवहार के दो भेद हैं- स्वविवेचनव्यवहार
और परग्रहण करावनरूप विवेचनव्यवहार। स्वविवेचन
व्यवहार के दो भेद हैं-उत्सर्ग और अपवाद, उत्सर्ग-
विवेचनव्यवहार- निर्विकल्पस धिरूप है, और
पवादस्वविवेचनव्यवहार- पवाद से विकल्प सहित
ध्यान प्र पाया है। परग्रहण ावन
विवेचन व्यवहार-यद्यपि दर्शन चारित्र आदि
आत्मा से अभेदरूप होकर एक त्र में अर्थात्
त्मप्रदेश में रहते हैं परन्तु जिज्ञा के समझाने के
लि ान दर्शन और चारित्र को देर कहकर आत्म-

बोध कराना, जैसे किसी को ज्ञान गु लेकर कहना, दर्शन से दर्शनी और रित्र से चारित्री इत्यादि।

अशुद्धव्यवहार के भी दो भेद हैं– १ सं षित शु व्यवहार और संश्लेषित अ द्धव्यवहार। संश्लेषित शुद्ध व्यवहार उस को कहते हैं जो 'यह रीर मेरा है और मैं रीर का हूँ' ऐसा कहना। षित अ द्ध व्यवहार उस को कहते हैं जो ' द्रि मेरा है' ऐसा कहना।

इस शुद्ध व्यवहार का प्रकार भी भेद होते हैं इस प्रकार – इस के मुख्य दो भेद हैं–विवेचनरूप द्ध व्यवहार और प्रवृत्तिरूप द्ध व्यवहार। विवेचनरूप अशुद्ध व्य ार तो अनेक प्र र का है। दूसरा जो प्रवृत्ति प अशुद्ध व्यवहार है उस के तीन भेद हैं–व त्ति, धन- त्ति और लौकिकप्रवृत्ति। उन में भी साधनप्रवृत्ति के तीन भेद हैं–लोकोत्तरसाधनप्रवृत्ति, ावचनिक साधनप्रवृत्ति और लोकव्यवहार साध वृत्ति। को- तरसाधनप्रवृत्ति–जो अरिहन्त की ज्ञा से शुद्ध ाध- नमार्ग में इहलोक संसार पुद्गल भोग शंसादि दोष रहित जो र थी की परिणति

है। प्रावचनिक साधन प्रवृत्ति-जो स्याद्वाद के वि मिथ्याभिनिवेश सहित साधनप्रवृत्ति है। लोक-व्यवहार साधनप्रवृत्ति-जो लोक के-अपने पने है और ल की रीति के- अनुसार प्रवृ करना।

तीसरे प्रकार से भी इस अशुद्ध व्यवहार के चार भेद होते हैं-शुभव्यवहार, अशुभव्यवहार, उपचरितव्यवहार और नुपचरितव्यवहार। शुभव्यवहार उसे कहते हैं जो पुण्य की क्रिया करे। अशुभव्यवहार उसे कहते हैं जो पाप की क्रिया करे। उपचरित व हार उस को कहते हैं जो धनादि परवस्तु हैं उन को अपनी कहे। नुपचरित व्यवहार उसे कहते हैं जो रीर आदि परवस्तु यद्यपि निश्चय नय से जीव से भि है परन्तु पारिणामिक भाव से जीव के साथ ध्री मिलजाने से तादात्म्य को प्राप्त हुई है इस को पनो कर के मानना।

(ऋजुसूत्र नय)

ऋजुसूत्र नय के दो भेद हैं-सूक्ष्मऋजुसूत्र और स्थूलऋजुसूत्र। सूक्ष्म ऋजुसूत्रवाला एक समय में जै परिणाम हो वैसा ही मानता है आ ि। को

नहीं मानता है। स्थूलऋजुसूत्रवाला या प्रवृत्ति अथवा कथनी के कथनेवाले को जैसा देखता है वैसा ही मानता है।

(शब्द नय)

शब्द नय के चार भेद हैं—नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। इन चार भेदों को ही जैनशा में निक्षेप कहते हैं।

(समभिरूढ नय)

समभिरूढ नय का यह एक ही भेद है।

(एवंभूत नय)

एवंभूत नय का भी पूर्वोक्त केवल एक ही भेद है।

अ न्य प्रकार से भी नयों के भेद कहते हैं—

१इसके अन्यठिकाने सात भेद भी कहे हैं, देखो नयचक्र देवचन्दजी कृत। २ इन निक्षेपों का विशेष विवरण देखो आगमसार नयचक्र, द्रव्यानुभवरत्नाकर आदि। ३ इस के अन्य ठिकाने दो भेद भी कहे हैं देखो नयचक्र देवचंदजी-कृत।

(नैगम नय)

नैगमनय भूत भावी और वर्त्तमान काल के भेद तीन प्रकार का है-भूत नैगम, भावी नैगम और वर्त्तमान म। तीत काल में वर्त्तमान काल का रोप करना वह भूत नैगम है, जैसे दीपमालिका के दिन कहना कि ाज श्री वर्द्धमान ामी मो गये। वी नैगम उसे कहते हैं जो भावी (भविष्यत्) ाल में भूतकाल का रोप करना, जैसे श्री रिहन्त देव हैं ो सि ही हैं, ऐसा कहना। वर्त्तमान नै उसे कहते हैं जो वस करने को प्रारम्भ की वह त्र हुई छ न हुई हो उ वस को हुई कहना जैसे ओदन (चाँवल) पकाया नहीं है परन्तु पका की तैयारी कर रहे हैं उ मय कहे कि ओदन पकाते हैं।

(संग्रह नय)

संग्रह के दो भेद हैं- ा न्यसंग्रह और विशेष ह। ामान्यसंग्रह वह है जो य वस्तुको न्यपने ग्रहण करे, जैसे- व द्रव्य परस्पर रोधी है ऐ कहना। विशेषसंग्रह वह है जो अन्य वस को त्याग कर स्व ाति को ग्रह करे, जैसे

य जीव चेतनस्वभाव द्वारा विरोधरहित है ऐसा कहना।

(व्यवहार नय)

व्यवहारनय दो प्रकार का है–सामान्यसंग्रहभेदक व्यवहार और विशेषसंग्रहभेदकव्यवहार। सामान्य हभेदकव्यवहार- जैसे जो द्रव्य है सो जीव अजीव स्वरूपी है ऐसा कहना। विशेष संग्रहभेदकव्यवहार–जैसे जीव है सो संसारी भी है भी है, ऐसा कहना।

(ऋजुसूत्र नय)

ऋजुसूत्र नय के भी दो भेद हैं- सूक्ष्मऋजुसूत्र और स्थूल ऋजुसूत्र। सूक्ष्म ऋजुसूत्र–जो सूक्ष्मपने वस्तु को संग्रह करे तथा जो एक सम व यों पर्याय ने। स्थूलऋजुसूत्र-- जो स्थूलपणे वस्तु को सं करे, तथा मनुष्यादि पर्याय को पने २ युः काल तक ठहर माने।

(शब्द नय)

शब्द नय एक प्रकार का है–जो ब्द के रा ही

कों ने जैसे-दारा, भार्या कलत्रं। ये शब्द नेक हैं परन्तु र्थ एक ही है।

(समभिरूढ नय)

मभिरूढ नय का भी एक भेद है जो जहां जैसी स्थाप कर के वस्तु को दृढ करे जैसे गो पशु है।

(एवंभूत नय,

एवंभूत नय का भी एक भेद है-जो जहां पने ब्द कहकर नाम ले जैसे-'इन्दतीति इन्द्रः' जो ऐश्वर्य धारण करे उसी का नाम इन्द्र है।

६ दृ न्तद्वार.

त नयों पर तीन दृष्टान्त हैं-पायली, बसती और प्रदे ।

पायली का-दृष्टान्त-

कोई पुरुष हाथ में फरसी (ल्हाडी) ले कर जंगल को चला, उस पुरुष को दे कर किसीने कहा कि हे भाई! तूँ कहां जाता है? तब वह वि द्ध नैगम

१ देशविशेष में प्रसिद्ध धान्य मापने का एक पात्र

नय के अभिप्राय से बोला कि मैं पायली लेने को हूँ, अब वृक्ष छेदते हुए उस को देख कर किसी पु ने पूछा भाई! तूँ क्या छेदता है?, तब वह विशुद्ध नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि ई! मैं पायली छेदता हूँ। अब वह वृक्ष काट कर घर लाया ौर घड़ने लगा तब किसी ने पूछा कि भाई! तूं क्या घड़ता है? तब वह विशुद्ध नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं पायली घड़ता हूँ। उस लक्कड़ को बीछणी कोरते हुए को देख कर किसी ने पूछा कि भाई! तूं क्या कोरता है?,तब वह विशुद्धतर नैगमनय के अभि- प्राय से बोला कि मैं पायली कोरता हूँ। उस को लेखिनी से समारतें हुए को देखकर किसी ने पूछा कि भाई! तूं क्या समारता है? तब वह अत्यन्त विशुद्धतर नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं पायली को समारता हूँ। अब वह पायली संपूर्ण ार हो गई और उस को पायली कहना, यहां तक वि द्धतर नैगमनय का अभिप्राय है। व्यवहार नय का भी इसी तरह मानना है। तब संग्रहनय वाला बोला कि भाई! जब इस में धान्य भरोगे तब यह पायली कही जायगी अन्यथा यह काष्ठ है। ऋजुसूत्र नय वाला

कहता है कि पायली में धान्य भर कर एक दो तीन चार पांच, इत्यादि शब्द कर के धान्य मापोगे तब पायली कही जायगी अन्यथा यह छ है और वह धान्य है। तब शब्दादि तीन नय वाले बोले कि उस पा ली में धान्य भर के जब उप ग सहित एक दो तीन चार पांच इत्यादि शब्द कर मापोगे तब पायली कही जायगी न्य यह काष्ठ है वह धान्य है और द है।

वसती का दृष्टान्त–

पाटलीपुत्र नगर के रहने वाले पुरुष को किसी निपुण पु ने पूछा कि भाई! तुम कहां रहते हो?

वह पुरुष अवि द्ध नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं लोक में रहता हूँ। तब वह निपुण पुरुष बो कि भाई! लोक तो तीन हैं–ऊर्द्ध्वलोक (ऊंचालोक) धोलोक (नीचालोक) और तिर्यग्लोक (तिरछालोक), य तूँ तीनों लोकों में रहता है? तब वह पुरुष विशुद्ध नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं तिरछालोक में रहता हूँ। तब वह निपुण पुरुष बोला कि भाई! तिरछालोक में तो जम्बूद्वीप से लेकर स्वयंभूरमण स द्र तक असंख्यात द्वीप स द्र हैं तो ।

तूं इन सब द्वीप समुद्रों में रह है ? तब वह वि द्धतर नैगम नय के भिप्राय से बोला कि मैं मध्य जम्बूद्वीप में रहता हूँ। तब वह निपुण पुरुष बोला कि भाई! मध्य जम्बूद्वीप में तो दश क्षेत्र हैं तो क्या तूं इन दशों ही क्षेत्रों में रहता है ? तब वह पुरुष अत्यन्त वि द्ध नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं भरतक्षेत्र में रहता हूँ। तब वह निपुण पुरुष बोला कि भाई! भरतक्षेत्र तो दो हैं - दक्षिणार्द्ध भरत और उत्तरार्द्ध भरत, तो क्या तूं दोनों ही क्षेत्रों में रहता है ? तब वह पुरुष त्यन्त विशुद्धतर नैगम नय के अभि य से बो कि मैं दक्षिणार्द्ध भरत क्षेत्र में रहता हूँ। तब वह निपुण पुरुष बोला कि दक्षिणार्द्ध भरत क्षेत्र में तो ग्राम, आगर, नगर, खेड़, कव्वड़ मड , द्रोणख, पट्टण, आश्रम, संवाह, संनिवेश आदि ब त से हैं तो क्या तूं इन सभी में रहता है ? तब वह पुरुष फिर अधिक विशुद्धतर नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं पाटलीपुत्र नगर में रहता हूँ। तब वह निपुण पुरुष बोला कि पा लीपुत्र नगर में तो ब

१ क्षेत्रों के नाम—भरत, ऐरवत, हैमवत, हैरण्यवत, हरिवास, रम्यकवास, देवकुरु, उत्तरकुरु, पूर्वमहाविदेह, पश्चिममहाविदेह क्षेत्र।

घर हैं तो क्या तू सभी घरों में रहता है? तब वह पुरुष फिर छ अधिक विशुद्धतर नैगम नय के भिप्राय से बोला कि मैं देवदत्त के घरमें रहता हूँ, तब वह निपुण पुरुष बोला कि देवदत्त के घर में तो ठे बहुत हैं तो क्या तू सभी कोठों में रहता है? तब वह पुरुष फिर कुछ अधिक विशुद्धतर नै नय के भि से बोला कि मैं मध्य घर (कोठे) में र ह हूँ। यहां तक तो विशुद्धतर नैगम नय का भिप्राय है। तथा व्यवहार नय का भी अभिप्राय इसी प्रकार का है। तब उस पुरुष को निपुण पुरुष ने कहा कि भाई! मध्य घर (कोठे) में तो जगह बहुत हैं तो तू कहां रहता है? तब वह पुरुष संग्रह नय के भिप्राय से बोला कि भाई! मैं अपनी शय्या पर रहता हूँ। तब वह निपुण पुरुष बोला कि भाई! शय्या को तो बहुत से आकाश प्रदेशों ने अवगाहे हैं तो तू कहां रहता है? तब वह पुरुष ऋजुसूत्र नय के अभिप्राय से बोला कि मेरी आत्मा (शरीर) ने जितने आकाशप्रदेश अवगाहे हैं उतने में रहता हूँ। तब वह निपुण पुरुष बोला कि भाई! आ श प्रदेशों को तो जीव और अजीव दोनों ने भी अवगाहे हैं तो तू कहां

१ जीव-सूक्ष्मनिगोदादिक। २ अजीव-हाड़ मांसादिक।

रहता है? तब वह शब्दादि तीन नयों के भिप्राय से बोला कि मैं अपने आत्मस्वरूप में रहता हूँ।

प्रदेश का दृष्टान्त–

नैगम नय वाला छह द्रव्यों का प्रदेश कहता है जैसे- धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीव प्रदेश, पुद्गल-स्कन्ध का प्रदेश, देश का प्रदेश। नैगम नय वाले के ऐसे कहनेपर संग्रह नय वाला बोला कि जो तू छह द्रव्यों का प्रदेश कहता है सो छह द्रव्यों का प्रदेश नहीं होता है क्यों कि देश का जो प्रदेश है वह उसी द्रव्य (स्कन्ध) का है किन्तु छठा प्रदेश अलग नहीं है, इस पर न्त कहते हैं- जैसे किसी साहूकार के दास ने खर (गर्दभ) खरीदा तब वह साहूकार कहता है कि दास भी मेरा और खर भी मेरा है परन्तु खर दास का नहीं कहलाता है। इस दृष्टान्त से छह द्रव्यों का प्रदेश मत कहो परन्तु पांच द्रव्यों का प्रदेश कहो–

१ शब्दनय के अभिप्राय से कहता है कि मैं अपने स्वभाव में रहता हूं। समभिरूढ नय के अभिप्राय से कहता है कि मैं अपने गुणों में रहता हूं। एवंभूतनय के अभिप्राय से कहता है कि मैं अपने ज्ञान दर्शन के उपयोग में रहता हूं।

धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्ति काय का प्रदेश, शास्तिकाय का प्रदेश, जीव का प्रदेश और पुद्गल-स्कन्ध का प्रदेश। संग्रहनय वाले के ऐसे बोलने पर व्यवहार नय वाला कहता है कि जो तूं पांच का प्रदे कहता है नहीं होता है, किस कारणसे? सो कहते हैं-जैसे पांच मित्र मिल (मि में) कोई वा रीदते हैं रू सो धन धान्य दि तो वे रूपा सो दि पांचों का कहला है, इसी रीति पांचों का प्रदेश कहने से ऐसी श । होती है कि चों के मिलने पर एक प्रदेश होता हो , इस सते च का प्रदेश मत कहो परन्तु प्रदेश पांच प्रकार का है ऐसा कहो जैसे-धर्मास्तिकाय का प्रदेश, धर्मास्ति य का प्रदेश, ाकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीव का प्रदेश, पुद्गलस्कन्ध प्रदेश। व्यवहार नय वाले के ऐसे कहने पर ऋजुसूत्र नय वाला कहता है कि जो तूं पांच प्रकार का प्रदे कहता है सो नहीं होता है, किस कारण से? कि पांच प्र र प्रदेश कहने से ऐसी शङ्का प्राप्त होती है कि ऐकेक द्रव्य का प्रदेश पांच पांच प्रकार का हो होगा, इ त पचीस प्रकार के प्रदे हो जाते हैं इसलिए पांच प्र र का प्रदेश कहो किन्तु 'भइय-व्वो' ीय प्रदेश कहो-१ ात् धर्मास्तिक ा प्रदेश,

२ ात् धर्मास्तिकाय का प्रदेश, ३ स्यात्
ास्तिकाय का प्रदेश, ४ स्यात् जीव का प्रदेश, ५ स्यात्
पुद्गलस्कन्ध का प्रदेश। ऋजुसूत्र नय वाले के ऐसे
बोलने पर शब्द नय वाला कहता है कि जो तूं
'भइयव्वो' भजनीय प्रदेश कहता है सो नहीं होता है
क्यों कि भजनीय प्रदेश कहने से ऐसी श । स
होती है कि जो धर्मास्तिकाय का प्रदेश है वही स्यात्
अधर्मास्तिक का भी प्रदे होता होगा, ात्
स्तिकाय का भी प्रदे होता होगा, स्यात् जीव
का भी प्रदेश होता होगा, स्यात् पुद्गलस्कन्ध का भी
प्रदेश हो होगा। इस रीति से जो अधर्मास्ति काय का
प्रदे है वही स त् ास्तिकाय का भी प्रदे होता
होगा, स्यात् । शास्तिकाय का भी प्रदे होता होगा,
ात् जीव का भी प्रदेश होता होगा, स्यात् पुद्गलस्कन्ध
का भी प्रदेश होता होगा। इसी तरह ाका ास्तिकाय
प्रदेश, जीव का प्रदे और पुद्गलस्कन्ध का प्रदेश.
को भी सम लेना चाहिये। ऐसे (भजनीय प्रदेश)
कहने से तो नवस्था दोष की प्राप्ति होगी इसलिए
भजनीय प्रदेश मत कहो किन्तु ऐसा कहो कि जो
रूप द्रव्य का प्रदेश है वही प्रदेश है, जो अधर्-
मेरूप द्रव्य का प्रदेश है वही म प्रदे है, जो

। श रूप द्रव्य का प्रदेश है वही ाकाशप्रदेश है, जो जीवरूप द्रव्य प्रदेश है वह जीव नहीं है, जो पुद्गलस्कन्ध रूप द्रव्य का प्रदेश है वह पुद्गलस्कन्ध नहीं है। शब्द नय वाले के ऐसे कहने पर समभिरूढ नय वाला बोलता है कि जो तूं धर्मरूप द्रव्य का प्रदे को धर्म प्रदेश कहता है शेष पूर्ववत् यावत् जो पुद्गलस्कन्धरूप द्रव्य का प्रदेश को पुद्गलस्कन्ध नहीं कहता है, यह नहीं होता क्योंकि इस जगह मास दो होते हैं तत्पुरुष और कर्मधारय, न मालूम कि तूँ किस समास के अभिप्राय से बोलता है, तत्पुरुष मास के भिप्राय से बोलता है ? या कर्मधारय मास के अभिप्राय से ? जो तूं तत्पुरुष समास के अभिप्राय से बोलता है तो ऐसा मत कहो और अगर कर्मधारय समास के अभिप्राय से कहता है तो विशेष प्रकार से कहो, जैसे– " धम्मे अ से पएसे अ से पएसे धम्मे। हम्मे अ से पएसे अ से पएसे अहम्मे। ागासे अ से पएसे अ से पएसे आगासे। जीवे अ से पएसे से पएसे नोजीवे। खंधे अ से पएसे अ से पएसे नोखंधे। " अर्थ– धर्मास्तिकाय का जो प्रदेश है वही प्रदेश धर्मद्रव्य है। अधर्मास्तिकाय का जो प्रदेश है ही प्रदेश धर्मद्रव्य है। ा ास्तिकाय का जो

प्रदेश है वही प्रदेश आ श द्रव्य है । जीव का जो प्रदेश है वह प्रदेश जीवद्रव्य नहीं है और पुद्गलस्कन्ध का जो प्रदेश है वह प्रदेश पुद्गलस्कन्ध नहीं है। समभि-रूढ नय वाले के ऐसे बोलने पर एवंभूत नय कहता है कि जो जो धर्मारि यादिक वस्तु तू कहता है वह वह 'सर्वं' सब ' त्स्नं' देशप्रदेशकल्पनारहित, 'प्रतिपूर्णं' स्व स्वरूप से अभिन्न, 'निरवशेषं' व-रहित, 'एकग्रहणगृहीतं' जो एकही नाम से बोला वे न अनेक नामों से, कारण कि नाम के भेद से में भेद की आपत्ति होजाती है इस लिए धर्मास्ति-कायादि वस्तु को संपूर्ण कहो किन्तु देशप्रदेशादिरूप से मत कहो क्यों कि देश भी मेरे मत में वस्तु नहीं है और प्रदेश भी मेरे मत में वस्तु नहीं है, सिर्फ अखण्ड वस्तु का ही सत्त्व से उपयोग होता है ॥

७ नयावतार द्वार

प्रथम जीव के विषय में सात नय कहते हैं—नैग-मनय के मत से गुण पर्याय और शरीर सहित सभी जीव हैं, इस नय ने ऐसे कहते हुए पुद्गलद्रव्य ि-स्तिकाय आदि को भी जीव में गिनलिया । संग्रह नय कहता है कि संख्यात प्रदे वाला जीव है, इ

ने के   ।काश प्रदेश को छोड़ दिया। व्यवहार नय कहता है कि जो विषयों को ग्रहण करे, कामादि की चिन्ता करे, पुण्यादि क्रिया करे वह जीव है, इस ने धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश तथा अन्य य पुद्गलों को छोड़ दिया किन्तु पांच इन्द्रियां, मन और लेश्या आदि सूक्ष्म पुद्गलों को जीव में ही गर्भित रक्खा, क्यों कि यह नय इन्द्रियादि विषयों को लेता है। ऋजुसूत्र नय कहता है कि जो उपयोग वाला है वही जीव है, इस नय ने सब पुद्गलों से जीव का पृथग्भाव तो किया कि ज्ञान अज्ञान का भेद नहीं किया। शब्द नय के अभिप्राय से नाम स्थापना द्रव्य और भाव इन चारों निक्षेपों वाला जीव है, इस नय ने गुण और निर्गुण का भेद नहीं किया। समभिरूढ नय वाला कहता है कि जो ज्ञानादिक गुणों से युक्त है वही जीव है, इ नय ने मतिज्ञान और श्रुतज्ञान आदि जो ।धक अवस्था के गुण हैं उन को भी जीव में शामिल किया। एवंभूत नय के अभिप्राय से वही जीव है जो नन्त ज्ञान अनन्त दर्शन अनन्त चारित्र और अनन्त वीर्य से युक्त होकर शुद्ध सत्ता वाला है, इस ने सिद्ध वस्था के जो गुण हैं उन्हीं गुणों से युक्त ो जीव कहा है।

अब धर्म के विषय में सातों नयों को उतारते हैं—

नैगमनय के मत में सब धर्म हैं क्यों कि सब कोई धर्म की इच्छा रखता है, इस नयने अंशरूप धर्म को भी धर्म नाम कहा है। संग्रह नय के मत से जो वंशपरम्परा का धर्म है वही धर्म है, इस नय ने अनाचार को छोड़कर कुलाचार को ग्रहण किया है। व्यवहारनय के मत से जो सुख का कारण है वही धर्म है, इस नय ने पुण्य की करनी को ही धर्म कहा। ऋजुसूत्र नय के मत से उपयोगसहित वैराग्यपरिणाम को धर्म कहते हैं, इस में यथाप्रवृत्तिकरण का परिणाम भी धर्म हो जाता है जो परिणाम मिथ्यात्वी लोगों को भी होता है। शब्दनय के मत से समकित की प्राप्ति को ही धर्म कहते हैं क्यों कि धर्म का मूल समकित है। समभिरूढ नय के मत से जीव अजीवादि नव तत्वों को या छह द्रव्यों को जानकर अजीव का त्याग करनेवाला और जीव-सत्ता को ध्यानेवाला जो ज्ञान दर्शन चारित्र का परिणाम वही धर्म है, इस नय ने साधक और सिद्ध इन दोनों परिणामों को धर्म में अङ्गीकार किया। एवंभूत नय के मत से शुक्लध्यान रूपातीत परिणाम और क्षपकश्रेणि, ये जो कर्मक्षय के हेतु हैं वेही धर्म है क्यों कि जीव

। मूलस्वभाव ही धर्म है, इस धर्म से ही दारूप
की सिद्धि होती है।

थ सिद्ध के विषय में सातों नयों को उतारते हैं-

नैगम नय के मत से सब जीव सिद्ध हैं क्यों कि
कुछ न का अंश तो प्रायः सब जीवों में रहता है।
तथा ग्रन्थों में ऐसा भी कहा है- आठ रुचक प्रदेश तो
प जीवों के सिद्ध के प्रदेशों के समान अत्यन्त निर्मल
ही रहते हैं उन में कर्म कदाऽपि नहीं लग सकते। संग्रह
नय के मत से सब जीवों की सत्ता सिद्ध के समान हैं,
इ नयने पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा छोड़ कर द्रव्या-
र्थिक नय की अपेक्षा को अंगीकार किया है। व्यवहार
नय के मत से मन की एकाग्रता कर के योगसिद्धि करे
उसे सिद्ध कहते हैं, इस नय ने व्यवहार को रूप माना
है। ऋजुसूत्र नय के मत से जिस ने सिद्ध की और
पने त्मा की सत्ता को पिछानी है और उपयोग
हित होकर ध्यान में लीन होवे, तथा जिस समय
पने जीव को सिद्धसमान माने उस वखत वह सिद्ध
है, इस नय की दृष्टि से क्षायिक समकिती (सम्यक्त्वी)
सिद्धि के लिए जो समकित से लेकर न दर्शन
रित्र राधने की जो जो क्रिया करने वाला है वह
सि है। ब्द नय के मत से जो भावनिक्षेप से युक्त

द्ध उपयोग की एकाग्रता से धर्म शुक्ल ध्यान रा समकितादि (सम्यक्त्वादि) गुण को प्रकट करता हु मोहनाशक १२ वें गुणठाणे क्षीणमोही होकर आत्म-सिद्धियों को प्राप्त करे वह सिद्ध है। इस नय ने पक श्रेणि वाले को सिद्ध माना है। समभिरूढ नय के मत से जो केवलज्ञान केवल दर्शन आदि गुणों से विभूषित है वही सिद्ध है, इस नय ने १३ वें १४ वें गुणठाणा में वर्त्तमान केवली भगवान् को भी सिद्ध माना है। एवंभूत नय के मत से वही सिद्ध कहा जा सकता है जो अष्ट कर्मों का क्षय कर के लोक के अग्रभाग में विराजमान और आठों गुणों से युक्त है।

अब समायिक पर सात नय उतारते हैं—

नैगम नय के मत से जब सामायिक करने का परिणाम हुआ तब ही सामायिक माना जाता है। संग्रह नय के मत से सामायिक के उपकरण लेकर विनयपूर्वक गुरु के समीप जाकर विधिपूर्वक आसन बिछाता है उस वखत सामायिक कहा जाता है। व्यवहार नय के मत से "करेमि भंते" का पाठ उच्चारण कर सावद्य योग का त्याग पूर्वक पच्चक्खाण (प्रत्याख्यान) करे उस वखत सामायिक माना जाता

है। ऋजुसूत्र नय के मत से मन वचन और काया के योग जब शुभ भाव में प्रवर्त्तने लगे तब ही सामायिक कहा जाता है। शब्द नय के मत से जीव और अजीव को सम्यक् प्रकार जानकर जीव-सत्ता को ध्यावे और अजीव से ममत्व भाव को दूर करे उस वखत सामायिक कहा जाता है। इस नय के अभिप्राय से क्षायिक सम्यक्त्व वाले के सामायिक माना है। समभिरूढ नय के मत से शुद्ध आत्मस्वरूप में रमगा करे उस वखत सामायिक माना जाता है, इस नय ने केवली भगवान् के ही सामायिक माना है। एवंभूत नय के मत से सकल कर्म रहित शुद्ध आत्मा शुद्ध उपयोग यु अनन्त चतुष्टय[1] सहित के सामायिक माना जाता है, इस नय के अभिप्राय से सिद्धों के सामायिक ना है।

य बाण पर सात नय उतारते हैं—

मार्ग में जाते हुए किसी पुरुष को बाण लगा तब वह पुरुष बाण को हाथ में लेकर नैगम नय के भिप्राय से बोला कि यह बाण मुझे लगा है और बहुत दुःख देता है। तब संग्रह नय वाला बोला कि

---

१ अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य।

बाण का तो कोई कसूर नहीं है बाण तो किसी पुरुष के हाथ से छुटा है इस वासते बाण के चलाने वाले का कसूर है। तब व्यवहार नय वाला बोला कि भाई! बाण मारने वाले का कोई कसूर नहीं है परन्तु तुम्हारे अशुभ ग्रह का जोर है अर्थात् अशुभ ग्रह का कसूर है। तब ऋजुसूत्र नय वाला बोला कि भाई! ग्रह का कोई कसूर नहीं है क्योंकि ग्रह तो सब ही समानदृष्टि वाले हैं किसी को भी दुःख देते नहीं हैं परन्तु तुम्हारे कर्मों का कसूर है। तब शब्दनय वाला बोला कि भाई! कर्मों का कोई कसूर नहीं है क्योंकि कर्म तो जड़ (अचेतन) हैं, कर्मों के करने वाले तो पने जीव ही हैं, जिस परिणाम से कर्म करते हैं वैसे ही फल भोगते हैं इसलिए तुम्हारे जीव का ही कसूर है। तब समभिरूढ नय वाला बोला कि भाई! जीव का तो कोई कसूर नहीं है जैसा केवली भगवान् ने भाव देखा हो वैसा हो जीव का परिणाम होता है, तदनुसार कर्म करता है, और वैसा ही फल भोगता है; उस को कोई टालने समर्थ नहीं है इसलिए समभाव का अवलम्बन करना चाहिये। तब एवंभूत नय वाला बोला कि ये सुख दुःख आदि सब बाह्य व्यवहार रूप प्रवृत्ति है, कर्मों का कर्त्ता तथा भो। कर्म ही है परन्तु

नि य दृष्टि से तो जीव जन्म मरण रोग शोक सुख दुः करके रहित है, शुद्ध सच्चिदानन्द परमज्योति परमानन्द सुखमय सत्ता से सिद्ध समान है इसलिए आत्म स्वरूप में रमण करना ही सुख का कारण है।

८ द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक-द्वार.

सात नयों में नैगम संग्रह व्यवहार और ऋजुसूत्र, ये चार नय तो द्रव्यार्थिक हैं और शब्द समभिरूढ और एवंभूत, ये तीन नय पर्यायार्थिक हैं।

कितनेक आचार्य निम्नोक्त प्रकार से भी कहते हैं— नैगम संग्रह व्यवहार, ये तीन नय तो द्रव्यार्थिक हैं और ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ एवंभूत, ये चार नय पर्यायार्थिक हैं।

द्रव्यार्थिक नय के दश भेद होते हैं वे इस प्रकार— १ नित्यद्रव्यार्थिक, २ एकद्रव्यार्थिक, ३ सद्द्रव्यार्थिक, ४ वक्तव्यद्रव्यार्थिक, ५ अशुद्धद्रव्यार्थिक, ६ अन्वय-

---

१ जो उत्पाद और व्यय पर्यायों को गौण मानकर द्रव्य के सत्ता-गुण को ही मुख्यतया ग्रहण करे उस को द्रव्यार्थिक कहते हैं।

२ जो पर्यायों को ही मुख्यतया ग्रहण करे उसको पर्यायार्थिक कहते हैं।

द्रव्यार्थिक, ७ परमद्रव्यार्थिक, ८ शुद्धद्रव्यार्थिक; ६ सत्ताद्रव्यार्थिक और १० परमभावग्राहकद्रव्यार्थि । १ नित्यद्रव्यार्थिक- जो सब द्रव्य को नित्यरूप से ीकार करे । २ एकद्रव्यार्थिक- जो अगुरुलघु और क्षेत्र की अपेक्षा न करके एक मूलगुण को ही इक ग्रहण करे । ३ सद्द्रव्यार्थिक- जो ज्ञानादि गुण से सब जीव समान हैं इसलिए सब को एक ही जीव कहता । स्वद्रव्यादि को ग्रहण करे; जैसे "स क्षणं द्रव्यम्" । ४ वक्तव्यद्रव्यार्थिक— जो द्रव्य में कहने योग्य गुण को ही ग्रहण करे । ५ अ द्धद्रव्यार्थिक- जो आत्मा को नी कहे । ६ अन्वयद्रव्यार्थिक- जो सब द्रव्यों को गुण और पर्याय से युक्त माने । ७ परमद्रव्यार्थिक- जो 'सब द्रव्यों की मूल सत्ता एक है' ऐसा कहे । ८ शुद्धद्रव्यार्थिक- जो प्रत्येक जीव के आठ रु प्रदेशों को शुद्ध निर्मल कहे । ९ सत्ताद्रव्यार्थिक- जो 'जीव के असंख्यात प्रदेश एक समान है' ऐसा माने । १० परमभावग्राहकद्रव्यार्थिक- जो 'गुण और गुणी एक द्रव्य है, आत्मा ज्ञान रूप है' ऐसा माने ।

पर्यायार्थिक नय के छह भेद होते हैं वे इस

१-यह ग्रन्थ की बात है शास्त्रों में नहीं मिलती ।

-१द्रव्य के पर्याय को ग्रहण करने ला, भव्य सिद्धत्व वग़ैरह द्रव्यके पर्याय हैं। २ द्रव्य के व्य पर्यायों को मानने वाला, द्रव्य के प्रदेश मान वग़ैरह व्य न पर्याय कहेजाते हैं। ३ गुणपर्याय को मानने , एक गुण से अनेकता होनी गुणपर्याय है जैसे धर्मादि द्रव्यों के एक गति-सहायकता गुण से अनेक जीव और पुद्गलों को सहायता करनी। ४ गुण के व्य न र्यायों का स्वीकार करनेवाला, एक गुण के अनेक भेदों को उसके व्यञ्जन-पर्याय कहते हैं। ५स्व· भाव पर्यायोंको मानने वाला, स्वभावपर्याय अगुरुलघु को कहते हैं, येपांचों पर्यायें सब द्रव्य में हैं। ६ विभाव· पर्यायको नेवाला पर्यायार्थिक नय का छठा भेद है, भावपर्य जीव और पुद्गल में ही है अन्य द्रव्य में नहीं, का चारों गतियों में नये नये भावों ग्रहण करना और पुद्गल का स्कन्ध वग़ैरह होना ही मशः उन दोनों द्रव्यों के विभावपर्याय हैं।

प्रकारान्तर से पर्यायार्थिक नय के छह भेद कहते हैं- १ अनादिनित्यपर्याय- जैसे पुद्गलद्रव्य मेरु· प्र पर्याय-। २ दिनित्यपर्याय- जैसे जीवद्रव्य का सिद्धत्व पर्याय-। ३ अनित्यपर्याय- जैसे प्रत्येक मय में द्रव्य उत्पन्न होता है और नष्ट हो है।

४ अशुद्धअनित्यपर्याय—जैसे जीव—द्रव्य के ज गैर मरण। ५ उपाधिपर्याय—जैसे जीव के साथ कर्मों बन्ध। ६ शुद्धपर्याय—जैसे मूलपर्याय[1] सब द्रव्यों एकसमान है।

व दूसरी तरह से भी द्रव्यार्थि के १० भेद और पर्यायार्थिक के ६ भेद कहते हैं जिस में द्रव्यार्थिक के १० भेद इस प्रकार—१ कर्मोपाधिनिरपे शु द्रव्यार्थिक—जो कर्मादि स्वरूप से अलग शुद्ध स्वरूप का अनुभव करना, जैसे संसारी जीव को सिद्धसमान कहना। २ उत्पादव्ययगौणत्वेन सत्ताग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक—जो उत्पाद व्यय की गौणता कर सत्ता स्वरूप से वस्तु को ग्रहण करना, जैसे द्रव्य नित्य है ऐसा कहना। ३ भेद कल्पनानिरपेक्ष(भिन्नस्वगुणपर्याय से अभिन्नशुद्ध द्रव्य का ग्राहक)शुद्ध द्रव्यार्थिक—जो भेद कल्पना से भिन्न द्ध वस्तु कहना जैसे निजगुणपर्याय से द्र अभि है ऐसा कहना। ४ कर्मोपाधिसापेक्ष द्रव्यार्थिक—जो कर्मोपाधि संयु वस्तु का अनुभव ना, जैसे आत्मा को क्रोधी नी आदि कहना। ५ उत्पादव्ययप्राधान्येन सत्ताग्राहक—अशुद्ध द्रव्यार्थिक-

१ अगुरुलघु पर्याय।

उत्पाद व्यय से संयुक्त वस्तु का अनुभव करना, जैसे घट एक समय में उत्पाद व्यय और ध्रौव्य से संयुक्त है, ऐसा कहना। ६ भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक–जो भेदकल्पना करके संयुक्त अशुद्ध घट का अनुभव करना, जैसे 'ज्ञान दर्शनादिक ात्मा का गुण हैं' ऐसा कहना। ७ अन्वय द्रव्यार्थिक–जो गुण पर्याय स्वभाव करके वस्तु का अनुभव करना, जैसे गुण–पर्याय–स्वभाववन्त द्रव्य है ऐसा कहना। ८ स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक–जो स्वद्रव्य को ही ग्रहण करे जैसे स्वद्रव्यादिचतुष्टय[२] की अपेक्षा से द्रव्य है ऐसा कहना। ९ परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक–जो परद्रव्य करके वस्तु को ग्रहण करे जैसे परद्रव्यादिचतु: य की अपेक्षा से द्रव्य नहीं है ऐसा कहना। १० परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक– जो स्वकीय स्वरूप का अनुभव करना जैसे ज्ञानस्वरूपी आत्मा है ऐसा कहना।

पर्यायार्थिक नय के दूसरी तरह से ६ भेद इस प्रकार– नादिनित्य पर्यायार्थिक जो अनादि और नित्य पर्याय पने वस्तु का अनुभवविषय, जैसे पुद्गलपर्याय नित्य है मेरु प्र व। २ सादिनित्यपर्यायार्थिक– जो आदि

---

२ द्रव्य क्षेत्र काल भाव।

करके संयुक्त है परन्तु नित्य है और पर्याय पने अ भव करना, जैसे सिद्धों का पर्याय नित्य है। ३ अनित्य-शुद्ध पर्यायार्थिक– जो सत्ता को गौण करके उत्पाद व्यय स्वभाव से अनुभव करना जैसे समय समय प्रति यि विनाशवान् है। ४ सत्ता सापेक्ष स्वभाव नित्याशुद्ध पर्यायार्थिक– जो सत्ता स्वभाव संयुक्त नित्य अशुद्ध पर्याय पने अनुभव करना जैसे एक समय में पर्याय तीनें स्वभावात्मक है। ५ कर्मोपाधिनिरपेक्षस्वभावनित्यशुद्ध पर्यायार्थिक– जो कर्म के उपाधि स्वभाव से भिन्न नित्य शुद्ध पर्याय पने अनुभव करना, जैसे संसारी जीव के पर्याय सिद्धपर्याय के समान द्ध है। ६ कर्मोपाधि सापेक्षस्वभाव अनित्याशुद्ध पर्यायार्थिक-- जो कर्मोपाधि स्वभाव से संयुक्त अनित्या द्ध पर्याय पने अनुभव करना, जैसे संसारी जीवों की उत्पत्ति और विनाश है।

९ सप्तभङ्गीद्वार.

भङ्गों के नाम— १ स्यात् अस्ति, २ स्यात् नास्ति, ३ स्यात् अस्ति नास्ति, ४ स्यात् अ व्य, ५ स्यात्

---

१ पूर्वपर्यायस्य विनाशः, उत्तरपर्याय स्योत्पादः, द्रव्यत्वेन ध्रुवत्वम्।

त अवक्तव्य, ६ स्यात् स्ति अवक्तव्य, ७ ात् स्ति नास्ति अवक्तव्य। भङ्गों के लक्षण-- १ अनेकान्तरूप से अर्थात् अपने द्रव्य क्षेत्र काल ौर की पे ा लेकर सब पदार्थ विद्यमान हैं यह 'स्यात् स्ति' नाम का प्रथम भङ्ग है, जैसे जीवद्रव्य ने ण और पर्यायों की पेक्षा से स्ति-- वि है, ऐसे ही सब द्रव्यों में अपने२ गुण और पर्यायों की अपेक्षा को लेकर सत्त्व कहना, यह म भङ्ग रह है। २ परद्रव्यादि कों की अपेक्षा से वस्तु का निषेध घत नेवाला 'स्यात्नास्ति' नाम दूसरा भङ्ग है, जैसे जीव द्रव्य में अन्य पांचों द्रव्यों के पर्याय नहीं हैं इस से परकीय गुण ियों या जीव नहीं है। ३ तीसरे भङ्ग का नाम है-' ात् अस्ति-नास्ति' जो एक ही मय में एक ही वस्तु में पने यादि की अपेक्षा स्तिता और परद्रव्यादि अपेक्षा स्ति है। ४ चौथा भङ्ग ' ात् वक्तव्य' का, जो एक वस्तु में उपर्यु तृतीय भङ्ग सार एक ही समय में अस्तिता और स्ति ता हैं लेकिन दोनों (अस्ति ता और स्तिता) धर्म युगपत् थ) व द्वारा नहीं कहे जा ते ों कि म पो है,

अनेक अव व्य,७ स्यात् एक अनेक युगपद् अवक्तव्य।

१० ात नयों के ७०० भेद द्वार.

सात नयों के मूल भेद दो हैं द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। द्रव्यार्थिक नय के तीन भेद हैं- १ नैगम २ संग्रह और ३ व्यवहार। पर्यायार्थिक नय के चार भेद हैं-१ ऋजुसूत्र २ शब्दनय ३ समभिरूढ ४ एवंभूत।

पूर्वो द्वार ८ वाँ पृष्ट ४३ में दूसरी तरह से द्रव्यार्थिकनय के १० भेद और पर्यायार्थिक नय के ६ भेद कहे हैं इन में से द्रव्यार्थिक नय के १० भेदों को "नैगम नय के तीन भेद- अतीत अनागत और मान। संग्रह नय के दो भेद-सामान्य संग्रह और विशेष संग्रह। व्यवहार नय के दो भेद- सामान्य संग्रह भेदक व्यवहार और विशेषसंग्रह भेदक व्यवहार।" इन तों के ऊपर गुणने से ७० भेद, और पर्यायार्थिक नय के ६ भेदों को "ऋजुसूत्र नय के दो भेद- सूक्ष्म ऋजुसूत्र और स्थूल ऋजुसूत्र, तथा शब्द समभिरूढ ौर एवंभूत, इन के एकेक भेद अर्थात् इन तीनों के तीन भेद" इन पांचों के ऊपर गुणने से ३० भेद। ये ब मिल कर १०० भेद हुए। इन (१००) भेदों को ात भंगों पर गुणने से ७०० भेद होते हैं।

११ निश्चयव्यवहार द्वार

पूर्वोक्त सातों नयों को सामान्य से निश्चय और व्यवहार इन दोनों नयों में समावेश करते हैं—

निच्छयमग्गो मुक्खो, ववहारो पुण्णकारणो वुत्तो।
पढमो संवररूवो, आसवहेऊ तओ बीओ ॥१॥

तात्पर्यार्थ— निश्चय नय से सत्ता का ज्ञान मोक्ष का कारण है और व्यवहार नय से क्रियाओं का करना पुण्य का हेतु है इसलिए निश्चय नय संवररूप- संवर का कारण- है और व्यवहार नय आश्रव का साधन है, अर्थात् शुभव्यवहार पुण्य कर्मों का और अशुभ व्यवहार पाप कर्मों का आश्रव है। यहां पर कोई कहे कि व्यवहार को छोड़ कर केवल निश्चय का ही आदर करना ठीक है, इस का उत्तर यह है कि—

जइ जिणमयं पवज्जह, ता मा ववहारनिच्छए मुयह।
एगेण विणा तित्थं,छिज्जइ अन्नेण ओ तच्चं ॥२॥

भावार्थ— भव्यजीवों को चाहिये कि यदि वे जिनमत को अङ्गीकार करना चाहते हैं तो व्यवहार और निश्चय इन दोनों नयों में से किसी का भी त्याग न करें। क्योंकि व्यवहार के अनुसार प्रवृत्ति और निश्चय

ार द्धा करनी चाहिये। व्यवहार का
वर पन करने से तीर्थ–शासन–का ही उच्छेद होता है।
यथा–"नहु एगचक्केग रहो पयाति" अर्थात् एक
क से रथ नहीं चलता है। जो व्यवहार को नहीं
ा है वह गुरुवन्दना, जिनभक्ति, तप और
प्र ाख्यान ादि आचार-धर्म को भी छोड़ देता है।
ाचार का त्याग करने से निमित्त कारण छोड़ दिया
है, निमित्त कारण के विना केवल उपादान
रण से कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती, इसी से
व्यवहार नय का मानना अ श्यक है। यदि केवल
ार नय ही माना जाय तो विना निश्चय नय के
तत्त्वों के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान ही नहीं होने पाता
और ना यथार्थ ज्ञान (तत्त्वज्ञान) के मोक्ष नहीं हो
कता, इसलिए विना निश्चय के व्यवहार निष्फल है,
इन- व्यवहार और निश्चय–दोनों के मिलने से ही कार्य
सिद्धि होती है इसलिए शास्त्रों में–"ज्ञानक्रियाभ्यां
मो :" ऐसा कहा है, अर्थात् ज्ञानांश निश्चय और
क्रियां व्यवहार है, इन दोनों से ही मोक्ष होता है॥२॥

२ निक्षेप द्वार.

जत्थ य जं जाणेज्जा, निक्खवं निक्खिवे निरवसेसं।
जत्थवि य न जाणिज्जा, चउक्कगं निक्खिवे तत्थ ॥१॥
(अनुयोगद्वारसूत्र)

अर्थ- जिस जीवादि वस्तु में जितने निक्षेप अपने से हो सके उतने निक्षेप सब में करना चाहिये। जो सब निक्षेपों का स्वरूप न जान सकें तो नाम स्थापना द्रव्य और भाव, ये चार निक्षेप तो जरूर करने चाहिये।१।

निक्षेप किस को कहते हैं? "प्रमाणनययोर्निक्षेपणं निक्षेपः।" इति वचनात्, प्रमाण और नय से वस्तु का स्थापित करे उसे निक्षेप कहते हैं। वह चार ार का होता है- १नाम निक्षेप, २स्थापना निक्षेप, ३द्रव्य निक्षेप, और ४ भाव निक्षेप।

१ नाम निक्षेप–जिस पदार्थ में जो गुण नहीं है उस को उस नाम से कहना वह नाम निक्षेप है। इस के तीन भेद होते हैं- १यथातथ्य नाम, २अयथातथ्य-नाम, और ३ अर्थशून्य नाम। १ यथातथ्य नाम–गुण-निष्पन्न नाम अर्थात् जो नाम गुण कर के सहित हो, जैसे परम ऐश्वर्यादिरूप इन्द्र की पदवी के भोगने वाले

को ही इन्द्र कहना, ऐसे ही तीर्थङ्कर चक्रवर्त्ती वा देव, इत्यादि, अथवा जीव का नाम जीव चैतन्य आत्मा. इत्यादि अनेक भेद कहना। २ अयथातथ्यनाम-जो नाम गुण कर के रहित हो, जैसे गोपालदारकादि को इन्द्रादिक शब्द कर के बोलाना, अथवा तनसुख धनसुख नयनसुख परमसुख हेमचन्द्र हस्तिमल्ल नरसिंह रचन्द धनपाल,तथा लक्ष्मीबाई दयाबाई इत्यादि। ३ अर्थशून्य नाम-जो नाम अर्थ से शून्य हो और जिस नाम के अक्षर प्रकट रूप में न हों; जैसे हाँसी खाँसी छीक बगासी (जम्भाई) टचुकार और भूषण का शब्द, इत्यादि ।

२ स्थापना निक्षेप- जो सङ्कत पदार्थ के अर्थ से शून्य हो और उसी सङ्कत पदार्थ के अभिप्राय से जिस में आकार दिया जावे, जैसे जम्बूद्वीप के पट को जम्बूद्वीप कहना, सतरंज के मोहरों को हाथी घोड़ा आदि कहना, तथा लकड़ी के घोड़े को घोड़ा कहना। इसके भी दो भेद हैं-सद्भावस्थापना और असद्भावस्थापना। सद्भावस्थापना-जो चारभुजा की मूर्त्ति चारभुजा का आकार,नान्दिये की मूर्त्ति नान्दिये का आकार। असद्भावस्थापना-गोलमोल टोल को तेल सिन्दूर लगाकर कहे कि ये मेरे भैरोंजी ये मेरे क्षेत्रपालजी।

इस के भी दो भेद हैं- इत्तरिय (इत्वरिका) और आवकहिय (यावत्कथिका), इत्तरिय-जो थोड़े काल के लिए बनाई जावे, आवकहिय- जो जावजीव के लिए बनाई जावे।

३ द्रव्यनिक्षेप- जो पदार्थ आगामी परिणाम की योग्यता रखने वाला हो, जैसे राजा के पुत्र को राजा कहना। अथवा अतीत अनागत पर्याय के कारण को भी द्रव्यनिक्षेप कहते हैं, इस के दो भेद हैं—आगम-द्रव्यनिक्षेप और नोआगम-द्रव्यनिक्षेप।

४ भावनिक्षेप- जो वर्त्तमान पर्याय संयुक्त वस्तु हो, जैसे राज्य करते हुए पुरुष को राजा कहना। इस के दो भेद हैं- आगम-भावनिक्षेप और नो-आगम-भावनिक्षेप।

अब आवश्यक पर चारों निक्षेपों को उतारते हैं- आवश्यक याने जो अवश्य करने के योग्य हो, अथवा ...दा सहित समस्त प्रकार से आत्मा को ज्ञानादि गुणों द्वारा वश करना, या गुणशून्य आत्मा को समस्त प्रकार से गुणों में निवास कराना वह आवश्यक है। इस के चार भेद होते हैं-१ नामावश्यक, २ स्थापना-वश्यक, ३ द्रव्यावश्यक और ४ भावावश्यक।

१ ना वश्यक–किसी एक जीव का या एक जीव तथा बहुत से जीवों का या बहुत से अजीवों का, तथा एक जीवाजीव का या बहुत से जीवाजीव का आवश्यक ऐसा नाम नियत करना उस को नामा वश्यक कहते हैं।

२ स्थापनावश्यक–"जण्णं कट्ठकम्मे वा चित्तकम्मे वा पोत्थ मे वा लेप्पकम्मे वा गंथिमे वा वेढिमे वा पूरिमे वा संघाइमे वा अक्खे वा वराडए वा एगो वा णेगो वा सब्भावठवणा वा असब्भावठवणा वा वस्सए त्ति ठवणा ठविज्जइ, सेत्तं ठवणावस्सयं" (अनुयोगद्वार सू. १०) अर्थ– जो क० काष्ठ से निपजाया आ रूप, चि० चित्रलिखित रूप, पोत्थ० वस्त्र से निपजाया हुआ रूप जैसे लड़कियों के बनाए हुए ढुलाढुली (गुड़िया) के रूप, अथवा संपुटक रूप पुस्तक में वर्त्तिकालिखित रूप, अथवा ताडपत्रादिकों को काट (कोर) कर के बनाया हुआ रूप, लेप्प० मृत्तिकादि से बनाया हुआ लेप्प रूप, गं० अत्यन्त कारीगरी कर के गाँठोंसे निपजाया हुआ रूप, वे० पुष्पवेष्टन क्रम से निपजाया हुआ आनन्दपुरादि में प्रसिद्ध रूप, अथवा जैसे ई एक दो आदि वस्त्रों को वींटता हुआ किसी रूप (आ)को बनावे, पू० पित्तल आदि धातु की ढाली ई

प्रतिमा का रूप, सं० बहुत से व ादिकों के टुकड़ों को सांध कर बनाया हुआ रूप जैसे कञ्चुकी, क्ख-ए० चन्दन के पासों का रूप, व० कोड़ियों का रूप। इन काष्ठकर्म आदि दशों के विषय में आवश्यक क्रिया युक्त साधु का एक अथवा अनेक, सद्भाव- (काष्ठकर्मादिकों के विषय यथार्थ आकार) अथवा असद्भाव- (चन्दन कौड़ादिकों के विषय आकार रहित) स्थापना करे वह स्थापनावश्यक है। इन नाम और पना में क्या विशेष है ? उत्तर- नाम तो यावत्कथिक (अपने आश्रय द्रव्य की अस्तित्व कथा पर्यन्त रहने वाला) होता है और स्थापना इत्वरा (थोड़े काल तक रहने वाली) और यावत्कथिका (अपने आश्रय द्रव्य की सत्तापर्यन्त रहने वाली) दोनों तरह की होती है।

३ द्रव्यावश्यक के दो भेद होते हैं—आगमतो द्रव्यावश्यक और नोआगमतो द्रव्यावश्यक। आगमतो द्रव्यावश्यक-"जस्सणं आवस्सए त्ति पदं सिक्खितं १, ठितं २, जितं ३, मितं ४, परिजितं ५, नामसमं ६, घोससमं ७, अहीणक्खरं ८, अणच्चक्खरं ९, अव्वाइद्धक्खरं १०, अक्खलिअं ११, अमिलिअं १२, अवच्चामेलिअं १३, पडिपुण्णं १४, पडिपुण्णघोसं १५, कंठोट्ठविप्प कं १६, गुरुवायणोवगयं १७, सेणं तत्थ वाय १८

१८, पुच्छणाए १९, परिअट्टणाए २०, धम्मकहाए २१, नो अणुपेहाए, कम्हा?" अणुवओगो दव्व" मिति कट्टु ।
(अनुयोगद्वार० सूत्र १३) अब इस सूत्र का अर्थ लिखते हैं—
जस्स० जिस किसी ने आवश्यक ऐसा पद (शा) ...ढ सीखा है १, ठि० स्थिर किया है २, जि० पूछने पर शीघ्र उत्तर दिया है ३, मि० पद क्षर की संख्या का सम्यक् प्रकार जानपना किया है ४, परि० आदि से अन्त तक और अन्त से आदि तक पढा है ५, नाम० अपना नामसदृश पक्का किया है याने भूले नहीं ६, घोस० उदात्तानुदात्तादि घोषसहित ७, अही- ण० अक्षर बिन्दु मात्रा हीन नहीं ८, अण० अक्षर बिन्दु मात्रा अधिक नहीं ९, अव्वा० धिक अक्षर तथा उलट पलट न बोले १०, अक्ख० अस्खलित उच्चारण याने बोलते समय अटके नहीं ११, अमि० मिलेहुए (संदिग्ध) अक्षर नहीं १२, अवच्चा० एक पाठ को वारंवार बोले नहीं अथवा सूत्रसदृश पाठ अपने मत से बनाकर सूत्र में बोले नहीं, अथवा एक सूत्र के सरीखे पाठ को सूत्रमध्ये बढ़ा कर बोले नहीं १३, पडि० काना मात्र ादि परिपूर्ण बोले १४, पडि० घोसं० काना मात्र आदि परिपूर्ण घोष कर के सहित १५, कंठो० कंठ ओष्ट से न मिला हुआ याने स्फुट प्रकट १६;

१६, गुरु० गुरु की दी हुई वाचना कर के पढ़ा है १७, फिर वह पुरुष वहां वा० दूसरे को वाचना देता है १८; पु० प्रश्न पूछता है १९, परि० वारवार याद करता है २०, धम्म० उपदेश देता है २१, अर्थात् इन इ स बोलों से तो सहित है, परन्तु उस में उ ोग नहीं है तो उसको आगम से द्रव्यावश्यक कहते हैं, क्योंकि जो उपयोग रहित होता है वह द्रव्यावश्यक कहा जाता है।

अब इस पर सात नयों को उतारते हैं- नैगम नय के अभिप्राय से एक पुरुष उपयोग रहित आव-श्यक करे उस को आगम से एक द्रव्यावश्यक कहते हैं, दो पुरुष उपयोग रहित आवश्यक करें उस को आगम से दो द्रव्यावश्यक कहते हैं और तीन पुरुष उपयोग रहित आवश्यक करें उस को आगम तीन द्रव्यावश्यक कहते हैं, इस प्रकार जितने पुरुष उपयोग रहित आवश्यक करें उतने ही को आगम से द्रव्या-वश्यक कहते हैं। व्यवहार नय वाले का भी यही अभिप्राय है। संग्रह नय के अभिप्राय से एक पु. उपयोग रहित आवश्यक करे अथवा बहुत से पु उपयोग रहित आवश्यक करें उन सब को आगम से एक द्रव्यावश्यक कहते हैं। ऋजुसूत्र नय भि-

प्राय से एक पुरुष उप ेग रहित ावश्यक करे उ
को ागम से एक द्रव्यावश्यक कहते हैं परन्तु पृथ-
क् (देजुदे) उपयोग रहित आवश्यक करने वालों को
इ नय वाला आगम से द्रव्यावश्यक नहीं मानता
है क्योंकि इस (ऋजुसूत्र) नय वाला तीत और
नागत काल को छोड़ कर केवल वर्त्तमान काल को
ग्य र कर उपयोग रहित अपने ही ावश्यक
ागम से एक द्रव्यावश्यक मानता है, जैसे स्वधन
(पना धन) । शब्दादि तीन नय वाले- जो ाव-
श्यक का जानकार है और उपयोग रहित है उस को
वर (आवश्यक) नहीं मानते हैं क्योंकि जो जानकार
है वह उपयोग रहित नहीं होता और जो उपयोग रहित
है वह जानकार नहीं हो सकता, इसलिए इस को
ब्दादि तीन नय वाले आगम से द्रव्यावश्यक ही
नहीं मानते हैं ।

नोआगम से द्रव्यावश्यक के तीन भेद हैं-
१ जानकशरीर (ज्ञशरीर) द्रव्यावश्यक, २ भव्यशरीर
द्रव्यावश्यक और ३ जानकशरीर-भव्यशरीर-तद्व्यति-
रिक्त द्रव्यावश्यक ।

१ जानक रीर नोआगम से द्रव्यावश्यक- जैसे
ई पुरुष ावश्यक इस सूत्र के अर्थ का जानकार

था और वह कालप्राप्त होगया, उस के मृतक शरीर को भूमि पर अथवा संथारे पर लेटा हुआ दे कर किसी ने कहा कि यह इस शरीर द्वारा जिनोपदिष्ट भाव से आवश्यक इस सूत्र का अर्थ सामान्य प्रकार से प्ररूपता था, विशेष प्रकार से प्ररूपता था, समस्त प्रकार भेदाभेद द्वारा प्ररूपता था तथा क्रिया विधि द्वारा सम्यक् प्रकार दिखलाता था, जैसे शहद के घड़े को तथा घी के घड़े को देख कर कोई कहे कि यह शहद का घड़ा तथा घी का घड़ा था।

२ भव्यशरीर नोआगम से द्रव्यावश्यक— जैसे किसी श्रावक के घर पर लड़के का जन्म हुआ उस वक्त उस को देख कर कोई कहे कि इस लड़के की आत्मा इस शरीर से जिनोपदिष्ट भाव द्वारा आवश्यक इस सूत्र के अर्थ का जानकार भविष्यत् काल में (आयंदा) होगा, जैसे नये घड़े को देख कर कोई कहे कि यह शहद का घड़ा तथा घी का घड़ा होगा।

३ जानकशरीर-भव्यशरीर-तद्व्यतिरिक्त नो आगम से द्रव्यावश्यक के तीन भेद होते हैं– १ लौकिक, २ प्रावचनिक और ३ लोकोत्तर। लौकिक-जानक शरीर-भव्यशरीर- तद्व्यतिरिक्त- नोआगम से द्रव्यावश्यक वह है जो कोई राजेश्वर तलवर माडम्बिक कौटुम्बिक

इभ्य श्रेष्ठी सेनापति सार्थवाह इत्यादिकों का प्रभात पहले यावत् जाज्वल्यमान सूर्योदय के वक्त मु धोना दाँत लना तेल लगाना स्नान- मज्जन करना सर्षप दूब आदि माङ्गलिक उपचारों का करना आरीसे में देखना धूप पुष्पमाला गन्ध ताम्बूल व आभूषण दि सब वस्तुओं द्वारा शरीर का शृङ्गार करना इत्यादि करने बाद राजसभा में पर्वतों में या बाग बगीचे आदि में नित्य प्रति अवश्यमेव जाना। इति लौकिक जानकशरीर- भव्यशरीर- तद्व्यतिरिक्त-नो ागम से द्रव्यावश्यक है।

वचनिक जानकशरीर- भव्यशरीर- तद्व्यतिरि - नोआगम से द्रव्यावश्यक- जो "चरग १ चीरिग२ चम्मखण्डिअ३ भिक्खोंड४ पंडुरंग५ गोअम६ गोव्वतिअ७ गिहिधम्म ८ धम्मचिंतग ९ अविरुद्ध१० रुद्ध११वुड्ढ १२ सावग१३ प्पभितिओ पासंडत्था कल्लं उप्पभायाए रयणीए जाव तेयसा जलंते इंदस्स वा खंदस्स वा रुद्दस्स वा सिवस्स वा वेसमणस्स वा देव- र वा न स्स वा जक्खस्स वा भूअस्स वा गुंदस्स अ ाए वा दुग्गाए वा कोट्टकिरियाए वा उवलेवण- संम ण- ावरिसण-धूव-पुप्फ-गंध- मल्लाइआइं दव्वा- वस् इं करेंति, सेत्तं प्पावयणियं दव्वावस्सयं।"

(श्री अनुयोग द्वार सूत्र सूत्र. २०) अर्थ— च० खातेहुए फिरने वाले१, ची० रास्ते में पड़े हुए चीथरों को पहनने वाले२, चम्म० चर्म को पहनने वाले३, भि० भिक्षा माँगकर खानेवाले४, पण्डु० शरीर पर भस्म लगाने वाले५, गो० बैल को रमाकर आजीविका करने वाले ६, गो० गाय की वृत्ति से चलने वाले७, गि० गृहस्थ धर्म को ही कल्याणकारी मानने वाले८, धम्म० यज्ञादि धर्म की चिन्ता करने वाले९, अवि० विनयवादी१०, वि० नास्तिकवादी ११, वु० तापस१२, सा० ब्राह्मण प्रमुख १३ पा० पाखण्डमार्ग में चलने वाले, इत्यादिकों का कल्लं० कल पाउ० प्रभात पहले यावत् जाज्वल्यमान सूर्योदय के होते हुए इ० इन्द्र के स्थान पर, खं० स्कन्द (कार्त्तिकेय) देव के स्थान पर, रु० महादेव के स्थान पर, शि० व्यन्तर विशेष के स्थान पर, वे० वैश्रमण के स्थान पर, दे० सामान्य देव के स्थान पर, ना० नागदेव के स्थान पर ज० व्यन्तर विशेष के स्थान पर भू० भूतों के स्थान पर मु० बलदेव के स्थान पर अ० आर्या– प्रशान्तरूप देवी के स्थान पर दु० महिषारूढ़ देवी के स्थानपर को० कोट्टक्रिया देवी के स्थान पर गोबर आदि से लीपना संमार्जन करना गन्ध जल छिड़कना धूप देना पुष्प चढ़ाना गन्ध देना गन्ध

माल्यका पहिनाना इति कुप्रावचनिक जानक-शरीर-भव्य रीर-तद्व्यतिरिक्त नो आगम से द्रव्यावश्यक।

लोकोत्तर जानकशरीर भव्यशरीर तद्व्यतिरि नो आगम से द्रव्यावश्यक-" जे इमे समणगुणमुक्कजोगी छक्कायनिरणुकंपा हया इव उद्दामा गया इव निरं सा घट्ठा मट्ठा तुप्पोट्ठा पंडुरपडपाउरणा जिणाणमणाणाए सच्छंदं विहरिऊणं उभओ कालं आवस्सयस्स उवट्ठंति, से तं लोगुत्तरिअं दव्वावस्सयं।" अर्थ-जे० जो ये साधु के सत्ताईस गुण और शुभ योग कर के रहित. छ० षट्काय की अनुकंपा से रहित ह० विना लगाम के घोड़े की तरह उतावले चलने वाले. गा० अं शरहित हस्तिवत् मदोन्मत्त. घ० फेनादि किसी द्रव्य से सुहाली करने के लिए जंघों को घसने वाले छे० तैल जलादि से शरीर और केशों को सवारने वाले. तु० होठों के मालिश करने वाले अथवा शीतरक्षादि के लिए मदन (मीण) से होठों को वेष्टित करने वाले. पंडु० धोये हुए सफेद वस्त्रों को पहिननेवाले. जि० तीर्थंकरों की आज्ञा से बाहिर. स० स्वच्छंद मति से विचरने वाले जो दोनों वक्त आवश्यक करते हैं। इति लोकोत्तर-जानक शरीर-भव्य शरीर-तद्व्यतिरिक्त नोआगम से द्रव्यावश्यक। इति द्रव्यावश्यक।

भावावश्यक के दो भेद हैं – १ आगम से भावावश्यक और २ नो आगम से भावावश्यक।

आगम से भावावश्यक – जिसने आवश्यक इस सूत्र के अर्थ का ज्ञान किया है और उपयोग कर के सहित है उस को आगम से भावावश्यक कहते हैं। नोआगम से भावावश्यक के तीन भेद होते हैं – १ लौकिक नोआगम से भावावश्यक २ प्रावचनिक नो आगम से भावावश्यक और ३ लोकोत्तर नोआगम से भावावश्यक।

लौकिक नोआगम से भावावश्यक–जो लोग पूर्वाह्न – प्रभात समय – उपयोग सहित भारत और अपराह्न-दुपहर पीछे–उपयोग सहित रामायण को वांचे तथा श्रवण करे उसको लौकिक नोआगम से भावावश्यक कहते हैं।

प्रावचनिक नोआगम से भावावश्यक–जो ये पूर्वोक्त चरक चीरिक यावत् पाखंड मार्ग में चलने वा यथावसर "इज्जंजलिहोमजपोन्दुरुक्कनमोक्कारमाइ–आइं भावावस्सयाइं करेंति से तं कुप्पावयणिअं भावावस्सयं" इ० यज्ञ विषय जलांजलि का देना अथवा संध्याऽर्चनसमय जलांजलि का देना, यथा देवी के सन्मुख हाथ जोड़ना, हो० अग्निहवन का

करना , ज० मंत्रादि का जप करना , उन्दु० देवतादि के सन्मुख वृषभवत् गर्जित शब्द करना नमो० " नमो भगवते दिवसनाथाय " इत्यादि नमस्कार का करना ; ये पूर्वोक्त कृत्य जो भाव से उपयोगसहित करें उस को कुप्राचनिक नोआगम से भावावश्यक कहते हैं, इति कुप्रावचनिक नोआगम से भावावश्यक।

लोकोत्तर नोआगम से भावावश्यक— " जण्णं इमे मणे वा समणी वा सावओ वा साविआ वा तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पिअकरणे तब्भावणाभाविए अण्णत्थ कत्थइ मणं अकरेमाणे उभओकालं आवस्सयं करेंति, सेतं लोगुत्तरियं भावावस्सयं " । ज० जो ये स० ांत स्वभाव रखने वाले साधु, स० साध्वी सा० साधु के समीप जिनप्रणीत समाचारी को नने वाले श्रावक, सा० श्राविका, तच्चित्ते० उसी आवश्यक में सामान्य प्रकार से उपयोग सहित चित्त को र ने वाले, तम्मणे० उसी आवश्यक में विशेष प्रकार से उपयोग सहित मन को रखने वाले, तल्लेसे० उसी आवश्यक में शुभ परिणाम रूप लेश्या वाले, तद० तच्चित्तादिभावयुक्त उसी आवश्यक की विधिपूर्वक क्रिया करने के ध्यवसाय वाले, तत्तिव्व० उसी

।वश्यक में प्रारंभ   ल से लेकर प्रतिक्षण चढ़ २ प्रशस्तविशेष   ध्यवसाय के रखने वाले, तदट्ठो० उसी ।वश्यक के र्थ विषे उपयोग सहित र्थात् तीव्रतर वैराग्य के रखने वाले, तदप्पि० उसी आवश्यक में सब इन्द्रियों (इन्द्रियों के व्यापार) को लगाने वाले, तब्भा० उसी आवश्यक के विषे अव्यवच्छिन्न उपयोग सहित अनुष्ठान से उ ष्ट भाव द्वारा परिणत ऐसे आवश्यक के परिणाम रखने वाले,   ण्णत्थ० उसी आवश्यक के सिवाय अन्यत्र किसी भी स्थान पर मन वचन और काया के योगों को न करते ए चित्त को एकाग्र रखने वाले, दोनों वक्त उपयोग सहित   वश्यक करें उसको लोकोत्तर नो ।गम से भावा-वश्यक कहते हैं। इति लोकोत्तर नो ।गम से भावा-वश्यक।

अब आवश्यक के ए र्थिक नाम कहते हैं--

१ ।वस्स -२ अवस्संकरणिज्जं ३ धुवनिग्गहो ४ विसोही य।

५ ज्झयणा छ वग्गो, ६ नाओ ७ आराहणा ८ मग्गो ॥ १ ॥

समणेणं सावएणय, अवस्स कायव्वयं हवइ जम्हा।
अंतो अहोनिसस्सय, तम्हा आवस्सयं नाम ॥ २ ॥

।ष० जो साधु आदिकों के अवश्य करने योग्य हो उसको आवश्यक कहते हैं, अथवा जिस के द्वारा ।नादिक गुण तथा मोक्ष समस्त प्रकार से वश (स्वाधीन) किया जावे उसको आवश्यक कहते हैं, अथवा म. प्रकार से इंद्रिय कषाय आदि भाव शत्रुओं को वश करने वालों से जो किया जावे उसको आवश्यक कहते हैं, अथवा जो समग्र गुण–ग्रामों का स्थान-भूत हो उसको आवासक (आवश्यक) कहते हैं, इत्यादि और भी दूसरे अर्थ अपनी बुद्धि से जान लेना चाहिये। अव० मो ।र्थी पुरुषों के जो नियम से अनुष्ठान करने योग्य हो उसे अवश्यंकरणीय कहते हैं २। ध्रुव० नाद्यनंत कर्मों का तथा उस के फलभूत संसार का नि ह हेतु होने के कारण उस को ध्रुवनिग्रह कहते हैं ३। वि० कर्मों से मलिन आत्मा को विशुद्धि करने का कारण होने से उस को, विशुद्धि कहते हैं ४। अज्झ० सामायिकादि छह अध्ययनों का समूह रूप होने से उस को अध्ययनषड्वर्ग कहते हैं। नाओ० भीष्ट अर्थ की सिद्धि का सच्चा उपाय होने से उस को न्याय कहते हैं, अथवा जीव और कर्मों के सम्बन्ध (अनादि कालका झगड़ा) को मिटाने वाला होनेके कारण उ को न्याय कहते हैं ६। ।रा० मोक्ष की आराधना

का कारण होने से उस को आराधना कहते हैं ७। मग्गो० मोक्ष रूप नगर में पहुँचाने वाला होने से उस को मार्ग कहते हैं ८। साधु और साध्वी श्रावक और श्राविकाओं से रात और दिन की संधि में अवश्य किया जाता है, इसलिए इस को आवश्यक कहते हैं।

३ द्रव्यगुण-पर्याय-द्वार

द्रव्य—"गुणपर्यायवद्द्रव्यम्" इति (तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ५ सूत्र ३८) वचनात् जो गुणों के समूह और पर्याय से युक्त हो उसको द्रव्य कहते हैं।

गुण—"सहभाविनो गुणाः" इति वचनात्, द्रव्य के पूरे हिस्से में और उस की सब हालतों में रहे उसको गुण कहते हैं।

पर्याय- "गुणविकाराः पर्यायाः" इति वचनात् गुणों के विकार को पर्याय कहते हैं, अथवा "क्रमवर्त्तिनः पर्यायाः" इति वचनात् जो क्रमसे बदलती रहे उस को पर्याय कहते हैं।

द्रव्य के दो भेद हैं- १ जीव द्रव्य और २ अजीव द्रव्य। गुण के अनेक भेद हैं, परन्तु मुख्यतया जीव

के गुण । दि और पुद्गल के गुण वर्णादि हैं।

पर्याय दो भेद हैं— १ आत्मभावी पर्याय, जैसे जीव की ज्ञान दर्शन चारित्र रूप पर्याय, २ दूसरी क्रम-भावी पर्याय–जैसे जीव चार गति चौवी दंडक, चौरासी ला जीवयोनि में गमन मन द्वारा अनेक प्रकार की पर्यायों को धारण करे।

अथ प्रकारान्तर से द्रव्य गुण पर्याय के भेद कहते हैं – द्रव्य तो छह प्रकार का है – १ धर्मास्तिकाय, २ धर्मास्ति य, ३ आका ास्तिकाय, ये तीन तो एक एक द्रव्य हैं। ४ जीवास्तिकाय, ५ पुद्ग रि · क और ६ काल द्रव्य; ये तीन अनन्त द्रव्य हैं।

इन के गुण कहते हैं — (१) धर्मास्तिकाय के ४ गुण हैं — १ अरूपित्व २ अचेतनत्व ३ अक्रियत्व और ४ चौथा गतिसहायकत्व गुण है। (२) धर्मा-स्ति य के भी ४ गुण हैं, जिन में तीन तो पूर्वो ौर चौथा स्थितिसहायकता गुण है। (३) ाकाशा-स्तिकाय के भी चार गुण हैं, जि में तीन तो वे ही पूर्वो और चौथा अवगाहनदानत्व गुण है। (४) जीव द्रव्य के भी चार गुण हैं – १ ज्ञान, २ नन्त दर्शन, ३ अनन्त चारित्र और ४ अनन्त वीर्य। (५) पुद्गल द्रव्य के भी चार गुण हैं – १ रूपित्व, २ चे-

तनत्व , ३ सक्रियत्व और चौथा मिलन वि रन रूप पू गलन गुण है। (६) लद्रव्य के भी चार गुण हैं- १ रूपित्व, २ अचे त्व , ३ अक्रियत्व और चौथा नया पुराना वर्त्तनाल ण गुण है।

इन में प्रत्येक की पर्यायें चार चार होती हैं — १धर्मास्ति य की चार पर्यायें-१स्कन्ध, २देश, ३प्रदेश और ४ गुरुलघु। २ धर्मास्ति य और ३ आकाशास्तिकाय की भी ये ही चार चार पर्यायें होतीं हैं। ४जीव द्रव्य की चार पर्यायें-१अव्याबाध, २अवगाह, ३ अमूर्त्त और ४ अगुरुलघु। ५पुद्गल द्रव्य की चार पर्यायें- १वर्ण, २गन्ध, ३रस, और ४स्पर्श अगुरुलघु सहित। ६ काल द्रव्य की चार पर्यायें -१अतीत, २अनागत, ३वर्त्तमान और ४अगुरुलघु।

फिर अन्य प्रकार से द्रव्य गुण पर्याय के भेद कहते हैं- द्रव्य तो पूर्वोक्त छह प्रकार है। गुण दो र का है- सामान्य और विशेष।

१– मुख्यपन से जीव की ये चार पर्यायें बतलाई हैं लेकिन और भी अनन्त पर्यायें होती हैं, क्योंकि भगवती. श. २ उ. १ खंधकजी के अधिकार में "अणंता णाणपज्जवा" इत्यादि अनन्त २ पर्यायें कहीं हैं। तथा प्रज्ञापना,सूत्र के ५ वें पर्याय पद में भी जीव के ज्ञानादि की अनन्त पर्यायें कथन की गई हैं।

१मान्य गुण दश प्रकार का होता है- १अस्तित्व, २वस्तुत्व, ३द्रव्यत्व, ४प्रमेयत्व, ५अगुरुलघु, ६प्रदेशत्व, ७चेतनत्व, ८अचेतनत्व, ९मूर्त्तत्व, और १०अमूर्त्तत्व। इन के लक्षण- १अस्ति (है) ऐसा जो भाव हो उस को अस्तित्व याने सद्रूपत्व कहते हैं। २सामान्य विशेषात्मक वस्तु के भाव को वस्तुत्व कहते हैं। ३द्रव्य के स्वभाव को अर्थात् अपने अपने प्रदेश के समूहों से खण्डवृत्ति द्वारा स्वभाव विभाव पर्यायों को वर्त्तमान में प्राप्त होता है भविष्यत् में प्राप्त होगा और भूत काल में प्राप्त हुआ था ऐसा जो द्रव्य का स्वभाव उस को द्रव्यत्व कहते हैं। ४प्रमाण द्वारा जिसका स्वपर स्वरूप जाना जावे वह प्रमेय है, उस के भाव को प्रमेयत्व कहते हैं। ५सूक्ष्म, वाणी के अगोचर, प्रतिक्षण वर्त्तता रहे और आगम प्रमाण से माना जावे, ऐसा जो गुण है उस को अगुरुलघु कहते हैं। ६प्रदेश के भाव (अविभागी पुद्गल परमाणु से व्याप्त) को प्रदेशत्व कहते हैं। ७चेतन के भाव को चेतनत्व (चैतन्य) कहते हैं। ८अचेतन के भाव को अचेतनत्व (अचैतन्य) कहते हैं। ९ जो रूप रस गन्ध और स्पर्श से सहित है वह मूर्त्त है, उस के भाव को मूर्त्तत्व कहते हैं। १० जो रूप रस गन्ध और स्पर्श से रहित है वह

अमूर्त्त है, उस के भाव को अमूर्त्तत्व कहते हैं।

धर्मास्तिकायादि छह द्रव्यों में से एक एक द्रव्य में पूर्वोक्त इन दश सामान्य गुणों में के आठ आठ गुण पाये जाते हैं, जैसे-१जीव द्रव्य में अचेतनत्व और मूर्त्तत्व ये दो गुण नहीं हैं, शेष आठ गुण (१अस्तित्व, २ वस्तुत्व, ३ द्रव्यत्व, ४ प्रमेयत्व, ५ अगुरुलघु, ६ प्रदेशत्व, ७चेतनत्व, ८अमूर्त्तत्व) पाये जाते हैं। २ पुद्गल द्रव्य में चेतनत्व और अमूर्त्तत्व ये दो गुण नहीं हैं, शेष आठ गुण(१अस्तित्व, २वस्तुत्व, ३द्रव्यत्व, ४प्रमेयत्व, ५अगुरुलघु, ६प्रदेशत्व, ७अचेतनत्व, ८मूर्त्तत्व,) पाये जाते हैं। ३-६ धर्म अधर्म आकाश और काल इन चार द्रव्यों में चेतनत्व और मूर्त्तत्व ये दो गुण नहीं हैं, शेष आठ गुण (१ अस्तित्व, २ वस्तुत्व, ३ द्रव्यत्व, ४ प्रमेयत्व, ५ अगुरुलघु, ६ प्रदेशत्व, ७अचेतनत्व, ८अमूर्त्तत्व) पाये जाते हैं। इस प्रकार दश गुणों में से दो दो गुण वर्ज कर शेष आठ आठ गुण प्रत्येक द्रव्य में पाये जाते हैं।

विशेष गुण सोलह प्रकार का होता है- १ज्ञान, २दर्शन, ३सुख, ४वीर्य, ५स्पर्श, ६रस, ७गन्ध, ८वर्ण, ९गतिहेतुत्व, १०स्थितिहेतुत्व, ११अवगाहनहेतुत्व, १२वर्त्तनाहेतुत्व, १३चेतनत्व, १४अचेतनत्व, १५मू-

त्तत्व, और १६अमूर्त्त । इन का थं इन्हीं शब्दों से ही स्पष्ट है इ लिए यहां विस्तार नहीं किया है। इन गो ह विशेष णों में नत के चार गु स्वजाति पे । से ामान्य ौर विजाति की पे । से शेष हैं।

इन सोलह गुणों में से जीव और जीव (पुद्गल) में छह गुण पाये जाते हैं, जैसे–१ जीव में–(१) ान, (२) दर्शन, (३) , (४) वीर्य, (५) चेतनत्व और (६) मूर्त्तत्व। २ जीव (पुद्गल) में– (१) स्पर्श, (२) र , (३) गन्ध, (४) वर्ण, (५) र्त्तत्व और (६) तनत्व। धर्म, धर्म, ाकाश और काल द्रव्य, इन चारों में तीन तीन गुण पाये जाते हैं वे इस प्रकार–हैं ३ धर्म द्रव्य में–गतिहेतु , चेतनत्व ौर मूर्त्तत्व। ४ धर्मद्रव्य में-स्थितिहे त्व, अचेतनत्व और मूर्त्त । ५ आ श-द्रव्य में– वगाहनदानत्व, चेतन ौर ग्रमूर्त्तत्व। ६ ल-द्रव्य में– वर्त्तनाहे त्व, चे-तन और र्त्तत्व।

ब पर्याय का स्वरूप कहते हैं—गुण के विकार को पर्याय कहते हैं। इस दो भेद हैं– स्वभावपर्याय ौर विभावपर्याय। अगुरुलघु के विकार को भाव

पर्याय कहते हैं, वह छह प्रकार की होती है- छह वृद्धि रूप और छह हानिरूप। म वृद्धिरूप के छह भेद दिखाते हैं-१ अनन्तभाग वृद्धि २असंख्यातभागवृद्धि, ३ संख्यातभागवृद्धि, ४संख्यातगुणवृद्धि, ५असंख्यातगुणवृद्धि, ६अनन्तगुणवृद्धि। अब हानिरूप के छह भेद दिखाते हैं-- १ अनन्तभागहानि, २ असंख्यातभागहानि, ३ संख्यातभागहानि, ४ संख्यातगुणहानि, ५ असंख्यातगुणहानि, ६ अनन्तगुणहानि। यह स्वभाव पर्याय छहों द्रव्यों में पाई जाती है।

विभावपर्याय चार प्रकार की होती है, वह जीव और पुद्गल दो ही द्रव्यों में पाई जाती है, शेष चार द्रव्यों में नहीं। जीव द्रव्य के अ प विभावपर्याय प्रकार है- १ विभावद्रव्यव्यञ्जनपर्याय-नरनारकादि पर्याय, थवा चौरासी लाख जीवयोनि पर्याय। २ विभावगुणव्यञ्जन-पर्याय- मत्यादि चार ज्ञान। ३ स्वभावद्रव्यव्यञ्जन- पर्याय- जैसे चरमशरीर से कि तू न्यून सिद्धपर्याय है। ४ स्वभावगुणव्य पर्याय- नन्तचतुष्टयस्वरूप। पुद्गल द्रव्य के आश्रय से भावपर्याय इस प्रकार है- १ विभावद्रव्यव्यञ्जन र्याय- द्व्यणुकादि स्कन्ध। २ विभावगुणव्य न

पर्याय- र से रसान्तर ौर गन्ध से गन्धान्तर ादि। ३ स्वभावद्रव्यव्यञ्जनपर्याय- अविभागी - पुद्गल। ४ भावगुणव्यञ्जन पर्याय- एक व , एक गन्ध, एक रस ौर दो स्पर्श।

४ द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव द्वार.

(द्रव्य.)

जगत् में जो पदार्थ पनी पर्याय को प्राप्त होता रहे उसे द्रव्य कहते हैं, क्योंकि गुण और पर्याय से यु ही द्रव्य माना गया है। द्रव्य के धर्मास्तिकायादि छह भेद हैं।

(क्षेत्र—आकाश)

जो वस्तु जितने आका प्रदेशों को अव हे (रोके) उस को क्षेत्र (स्थानविशेष) कहते हैं। इस के मुख्य दो भेद हैं- लोका श और अलोकाका । लोकाका के तीन भेद हैं- अधोलोक (नीचालोक), तिर्यग्लोक (तिरछालोक) और ऊर्ध्वलोक (ऊंचा लोक)। धोलोक के सात भेद- १ रत्नप्रभा पृथिवी धोलोक, २ शर्कराप्रभा पृथिवी अधोलोक, ३ वा प्रभा पृथिवी धो क, ४ पंकप्रभा पृथिवी अधोलोक, ५ धूमप्रभा-

पृथिवी अधोलोक, ६तमःप्रभा पृथिवी अधोलोक, और ७तमस्तमःप्रभा पृथिवी अधोलोक। तिर्यग्लोक के जम्बू द्वीप और लवणसमुद्र से यावत् स्वयम्भूर द्वीप और स्वयम्भूरमण समुद्र तक जितने असंख्य द्वीप समुद्र हैं, उतने ही तिर्यग्लोक के भेद हैं। ऊर्ध्वलोक के पन्द्रह भेद—१ धर्म देवलोक से लेकर यावत् १२ वाँ च्युत देवलोक, १३ वाँ नवग्रैवेयक, १४ वाँ प अनुत्तर विमान और १५ वाँ ईषत्प्राग्भारा पृथिवी, ये पन्द्रह भेद ए।

(काल.)

जिस के द्वारा वस्तुओं की नूतन वा पुरातन पर्याय उ होती हो उसी का नाम काल है, इस के अनेक भेद हैं -- १ समय, २ आवलिका, ३ उच्छ्वासनिःश्वास, ४ प्राण (एकश्वासोच्छ्वास), ५ स्तोक (स प्राण), ६ लव (सात स्तोक), ७ मुहूर्त्त (७७ लव, थवा ५३९ स्तोक, थवा ३७७३ श्वासोच्छ्वास, थवा १६७७७२१६ एक करोड़ सड़सठ ला सतह त्तर हजार दो सौ सोलह आवलिका, अथवा दो घड़ी, थवा ४८ मिनिट), ८ अहोरात्र (३१ मुहूर्त्त । २४ घण्टे), ९ पक्ष (पन्द्रह होरात्र, १० म (

), ११ ऋ (दो मास), १२ यन (तीन ऋतु); १३ सँवत्सर (दो न), १४ युग (पांच सँ र), १५ सौ वर्ष, १६ हजार , १७ ला , १८ पूर्वाङ्ग (८४ला वर्ष), १९ पूर्व (७०५६०००००००००० र ला करोड़ वर्ष और छप्पन हजार करोड़ वर्ष), प्रकार प्रत्येक को चौरासी ८४ ला से गुणा कर पर उत्तरोत्तर संख्या होती जाती है, जैसे – एक पूर्व को ८४ से गुणा करने पर एक २० त्रुटिताङ्ग, और इस को ८४ ला से गुणा ने से २१ त्रुटित होता है इसी तरह २२ अडडाङ्ग, २३ डड, २४ ववाङ्ग, २५ वव, २६ हूहूयांग, २७ हूहूय, २८ उपलाङ्ग, २९ उपल, ३० पद्माङ्ग, ३१ पद्म, ३२ नलिनाङ्ग, ३३ नलिन, ३४ अक्षनिपुराङ्ग, ३५ अक्षनिपुर, ३६ युताङ्ग, ३७ अयुत, ३८ नयुताङ्ग, ३९ नयुत, ४० प्रयुताङ्ग, ४१ प्रयुत, ४२ चूलिकाङ्ग, ४३ चूलिका, ४४ शीर्षप्रहेलिकाङ्ग, ४५ शीर्षप्रहेलिका (७५८२६३२५३०७३०१०२४११५७९७३५६९९७५६९६४०६२१८९६६८४८०८०१८३२९६००००००००० ०००००००००००००००००००००००० ०००००००००० ०००००००००००००००००००००००० ०००००००००० ०००००००००००००००००००००००० ००००००००००

०००००००००००००००००००००००००० ००००००००००
०००) होती है। तथा ४६ पल्योपम, ४७ सागरोपम,
४८ उत्सर्पिणी अवसर्पिणी, ४९ कालचक्र, ५०
पुद्गलपरावर्त्तन , ५१ अतीतकाल , ५२ अनागत
काल और ५३ सर्वकाल, इत्यादि अनेक भेद होते हैं।

(भाव.)

वस्तु के स्वभाव गुण और पर्याय को भाव कहते हैं, इसके छह भेद हैं– १ औदयिक, २ औपशमिक, ३ क्षायिक ४ योपशमिक, ५ पारिणामिक और ६ सान्निपातिक। इन विस्तार अधिक है; इसलिए ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से यहां पर नहीं लिखते हैं, जिन विशेष जिज्ञा- ओं को जानना हो, वे श्रीअनुयोगद्वार सूत्र छह नाम के अधिकार में से जान लेवें।

५ द्रव्य- भाव- द्वार.

(द्रव्य.)

जो प्राणी कार्य करता है परन्तु उसमें उस की चित्तवृत्ति लगी हुई न रहे अर्थात् शून्यउपयोग रहे, के रूप को जाने विना ही कार्य करता रहे

उस के लाभालाभ का ख़याल नहीं करे उसका वह कार्य द्रव्य कहलाता है।

(भाव.)

जिसने जो कार्य प्रारम्भ किया है, वह उस कार्य के द्रव्य क्षेत्र काल और भाव को जाने, होना न होना विचारे, कार्य की साधकता और बाधकता जाने, उपयोग को मुख्य र कर चले, और कार्य के को जाने, उस के कार्य को भाव कहते हैं।

(भ्रमर.)

अब इन द्रव्य और भाव पर भौंरे का दृष्टान्त कहते हैं, जैसे किसी भौंरे ने काष्ट को कोरा और उसकी कोरनी में "क" अक्षर कोरा गया किन्तु भौंरा नहीं जानता है कि मैंने "क" अक्षर कोरा है, उस "क" र का कर्त्ता द्रव्य से वह भौंरा है इसलिए उसके वह द्रव्य "क" कहलायगा और कोई पण्ि त ाकर उस "क" क्षर की पर्याय को पहचाने और उसे "क" ऐसा कहे उस पण्डित के वह भाव "क" कहलायगा।

६ कारण-कार्य द्वार.

(कारण .)

जिस के द्वारा कार्य नजदीक हो उसे कारण कहते हैं। अर्थात् कार्य के मूल को कारण कहते हैं।

(कार्य .)

जो कुछ करना प्रारम्भ किया उस के सम्पूर्ण होने से वह कार्य कहलाता है।

इन कारण कार्य पर दृष्टान्त कहते हैं, जैसे किसी पुरुष को रत्नाकर द्वीप जाना है और रास्ते में स द्र आगया उस को तैरने के लिए जहाज में बैठना वह तो कारण है और रत्नाकर द्वीप पहुंचना वह कार्य है।

७ निश्चय-व्यवहार द्वार.

(निश्चय .)

वस्तु का निज स्वभाव - जो तीनों काल एक अवस्था में रहे - उस को निश्चय कहते हैं।

(व्यवहार .)

वस्तु की जो बाह्य प्रवृत्ति याने अवस्था का बद

। भेदाभेद द्वारा विवेचन करना, उस को व्यवहार कहते हैं।

इन दोनों पर दृष्टान्त कहते हैं, जैसे ढीला गुड़ व्यवहार से मीठा है, परन्तु नि य से उस में पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस और ठ स्पर्श, ये वीस बोल पाये जाते हैं। इसी प्रकार कोयल व्यवहार से काली है और निश्चय से उस में पूर्वोक्त वीसों बोल पाये जाते हैं। ऐसेही तोता व्यवहार से हरा है, मजीठ ल है, हलदी पीली है, शङ्ख सफेद है, कोष्ठ गन्ध मय है, मृतक रीर दुर्गन्ध मय है, नीम तीखी है, सोंठ कड़ुवा है, कविट्ट कसायला है, इमली खट्टी है, श मीठी है, व कर्कश है, मक्खन मृदु (हाला) है, लोहा भारी है, उल्लू की पाँख हलकी है, हिम शीत है, अग्नि उष्ण है, तेल स्निग्ध है, और भस्म रुक्ष है परन्तु निश्चय से इन सब में पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस ौर आठ स्पर्श, ऐसे वीसों बोल पाये जाते हैं। निश्चय से जीव मर है और व्यवहार से मरता है। निश्चय से पानी पड़ता है और व्यवहार से परनाल मोरी पड़ती है। निश्चय से गाँव के प्रति मनुष्य गया और व्यवहार से गाँव आया, इत्यादि।

८ उपादान-निमित्त कारण द्वार.

(उपादान कारण)

जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप परिणमे उस को उपादान कारण कहते हैं, जैसे घट की उत्पत्ति में मिट्टी। त अनादि काल से द्रव्य में जो पर्यायों का प्रवाह चला आरहा है उस में जो अनन्तर पूर्वक्षणवर्त्ती पर्याय है वह उपादान कारण है और अनन्तर उत्तरक्षणवर्त्ती जो पर्याय है वह कार्य है।

(निमित्त कारण)

जो पदार्थ स्वयं कार्य रूप न परिणमे किन्तु कार्य की उत्पत्ति में सहायक हो उस को निमित्त कारण कहते हैं, जैसे घट की उत्पत्ति में कुम्भकार दण्ड चक्र आदि।

उपादान कारण शिष्य का और निमित्त कारण गुरु महाराज का जिस से ज्ञान की प्राप्ति होती है। इस पर चौभङ्गी कहते हैं-

१-निमित्त अशुद्ध और उपादान भी अ द्ध-जैसे गुरु अज्ञानी और शिष्य भी अज्ञानी। २ निमित्त द्ध और उपादान द्ध- जैसे गुरु अज्ञानी और शिष्य

ानी । ३ निमित्त शुद्ध और उपादान अशुद्ध –जैसे रु ानी और शिष्य अज्ञानी । ४ उपादान शुद्ध और निमित्त भी शुद्ध – जैसे गुरु ज्ञानी और शिष्य भी ानी । इस चौभङ्गी में पह भंग सर्वथा अशुद्ध और चरम (न्तका) भंग सर्वथा शुद्ध है । बीच के दो भङ्ग । न्य हैं ।

थवा जैसे उपादान घास का और निमित्त थ का जिस से दूध की प्राप्ति हुई । उपादान दूध और निमित्त जावन (छाछ मठा आदि) देने का जिस से दही की सि हुई । उपादान दही का और निमित्त बिलोने जिस से मक्खन की प्राप्ति हुई । उपादान न और निमित्त अग्नि का जिस से घी की ई ।

९ प्रमाण द्वार.

ज्ञान को प्रमाण कहते हैं, इस के चार भेद हैं– १प्रत्यक्ष, २अनुमान, ३उपमा और आगम ।

---

१ प्रमाण के दूसरी जगह दो भेद कहे हैं– प्रत्यक्ष और परोक्ष । परोक्ष अर्थात् दूसरे की सहायता से पदार्थ को अस्पष्ट जानना । इस (परोक्ष) के तीन भेद हैं– १ अनुमान, २ उपमा और आगम । इस प्रकार चार भेद कहते हैं ।

१ प्रत्यक्ष प्रमाण

जिस के द्वारा पदार्थ स्पष्ट जाना जावे उस को प्रत्यक्ष कहते हैं। इस के दो भेद हैं- इन्द्रिय प्रत्य और नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष। इन्द्रिय प्रत्यक्ष के पांच भेद हैं- १श्रोत्रेन्द्रिय प्रत्यक्ष, २च रिन्द्रिय प्रत्यक्ष, ३घ्राणेन्द्रिय प्रत्यक्ष, ४रसनेन्द्रिय प्रत्यक्ष, और स्पर्शेन्द्रिय प्रत्यक्ष। नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष के तीन भेद हैं- १ अवधिज्ञान प्रत्यक्ष, २मनःपर्यवज्ञान प्रत्यक्ष और ३केवलज्ञान प्रत्यक्ष।

२ अनुमान प्रमाण

साधन से साध्य के ज्ञान को अनुमान कहते हैं। इस के तीन भेद हैं- १पूर्ववत, २शेषवत् और ३दृष्टसाधर्म्यवत्।

पूर्ववत्- पूर्वोपलब्ध विशिष्ट चिह्न द्वारा जो पदार्थ का ज्ञान किया जावे, उस को पूर्ववत् कहते हैं, जैसे किसी माता का पुत्र बाल्यावस्था में विदेश चला गया और वह जवान होकर पीछा अपने घर आया तो उस की माता पूर्वदृष्ट क्षत व्रण लाञ्छन मस और तिल आदि चिह्नों द्वारा अपने पुत्र को पहचाने।

(१) शेषवत्– जो पुरुषार्थ के उपयोगी और जानने की चाह वाले अर्थ (प्रयोजन) से अन्य, जो उस से हित है उस को शेषवत् कहते हैं, इस के पांच भेद हैं– १कज्जेणं (कार्येण), २कारणेणं (कारणेन), ३गुणेणं (गुणेन), ४अवयवेणं (अवयवेन), ५आसएणं (आश्रयेण)।

(कज्जेणं)– जो कार्य द्वारा कारण का अनुमान किया जावे, जैसे शब्द से शङ्ख, केकारव (मोर की बोली) से मयूर, हेषित (हिनहिनाहट) शब्द से अश्व, गुलगुलाट शब्द से हाथी और घणघणाट शब्द से रथ इत्यादि का नुम किया जावे।

(कारणेणं)– जो कारण द्वारा कार्य का अनुमान किया जावे, जैसे तन्तुओं द्वारा कपड़े का अनुमान किया जावे क्योंकि तन्तु कपड़े के कारण हैं, किन्तु क तन्तुओं का कारण नहीं। इसी प्रकार वीरण (डा) कड़े (टोकरे) का कारण है, परन्तु कड़ा वीरण कारण नहीं तथा घड़े का कारण मृत्पिण्ड (मिट्टी का पिंड) है किन्तु मृत्पिण्ड का कारण घड़ा नहीं। रोटी का कारण आटा है, किन्तु आटे का कारण रोटी नहीं, इत्यादि।

(गुणेणं)-जो गुणों द्वारा गुणी (वस्तु का) अनुमान किया जावे, जैसे- ५६१०६१५ वानी[1] सोना निकष (कसोटी) में आया हुआ वर्ण द्वारा, पुष्प गन्ध द्वारा, लवण (नमक) रस द्वारा, मदिरा आस्वाद द्वारा, वस्त्र स्पर्श द्वारा, इत्यादि ।

(अवयवेणं)- जो अवयवों द्वारा अवयवी (वस्तु) का अनुमान किया जावे, जैसे भैंसा सींग द्वारा, कुट शिखा द्वारा, हस्ती दन्तमुशल द्वारा, सूअर दंष्ट्रा (डाढ़) द्वारा, मयूर पिच्छ (पँख) द्वारा, अश्व खुर द्वारा, बाघ नख द्वारा, चमरी गाय चामर द्वारा, बानरलाङ्गूल (पूँछ) द्वारा, मनुष्य द्विपद(दोपैर)द्वारा, गाय चौपद द्वारा, कानखजूरा और गजाई बहुपद द्वारा, सिंह केशरों द्वारा, वृषभ ककुद (स्कन्ध) द्वारा, स्त्री वलय द्वारा, भट शस्त्र द्वारा, महिला साड़ी कञ्चुकी द्वारा, द्रोणपाक (चाँवल आदि का कड़ाह) एक सित्थ (एक दाना) द्वारा, कवि गाथा द्वारा, इत्यादि जाना जावे ।

(आसएणं) जो आश्रय द्वारा अनुमान किया जावे, जैसे अग्नि धूम द्वारा, सरोवर बगुलों की पंक्ति

१ यह सोने की जाति का नाम है।

द्वारा, वृष्टि बादलों के विकार द्वारा, लीन पुत्र शील आचार द्वारा, इत्यादि जाना जावे।

(३) दृष्टसाधर्म्यवत्- पूर्वोपलब्ध अर्थ के साथ जो साधर्म्य (तुल्यपना) हो उस को दृष्टसाधर्म्य कहते हैं, और वह गमक (जनानेहार) पने से विद्यमान है जिस में, उस को दृष्टसाधर्म्यवत् कहते हैं, इस के दो भेद हैं- सामान्य दृष्ट और विशेष दृष्ट।

सामान्य पने देखे हुए अर्थ के योग से सामान्य दृष्ट कहा जा है, जैसे सामान्य पने (आकृतिद्वारा) तो जैसा एक पुरुष है वैसे ही बहुत पुरुष हैं और जैसे बहुत पुरुष हैं वैसा ही एक पुरुष है; तथा जैसा एक सोनैया है वैसे ही बहुत सोनैये हैं, और जैसे बहुत सोनैये हैं वैसा ही एक सोनैया है।

विशेष पने देखे हुए अर्थ के योग से विशेष दृष्ट कहा जाता है, जैसे किसी पुरुष ने कहीं भी किसी एक पुरुष को पहले देखा था और उसी पुरुष को समयान्तर में बहुत पुरुषों की समाज के मध्य बैठा आ देखकर वह अनुमान करता है कि मैंने इस पुरुष को पहले कहीं देखा था वही यह पुरुष है। इसी प्रकार पूर्वदृष्ट एक सोनैये को बहुत से सोनैयों के बीच में

पड़ा हुआ देख अनुमान करे कि यह सोनैया वही है जिसे मैंने पहले देखा था।

इसी विशेष दृष्ट के संक्षेप से तीन भेद कहते हैं- अतीत काल ग्रहण, वर्त्तमान काल ग्रहण और अनागत काल ग्रहण।

अतीत काल विषय जो ग्राह्य वस्तु का परिच्छेद(ज्ञान) उसको अतीतकाल ग्रहण कहते हैं, जैसे ग्रामान्तर जाते हुए किसी पुरुष ने रास्ते में तृण सहित भूमि धान्य के बहुत समूह (ढेर) निपजे हुए, ण्ड सरोवर नदी बावड़ी तालाव आदि भरे हुए, और बाग बगीचे हरे भरे देखकर अनुमान किया कि इस स्थान पर अतीत काल में वृष्टि हुई है।

जो वर्त्तमानकालविषयक ग्रहण हो उसको वर्त्तमान काल ग्रहण कहते हैं, जैसे गोचरी जाते हुए किसी मुनिराज ने अत्यन्त भाव भक्ति से प्रचुर भात पानी देते हुए बहुत दातारों को देखकर अनुमान किया कि यहां अभी वर्त्तमान काल में भिक्ष है।

जो अनागत (भविष्यत्) काल विषयक ग्रहण हो उस को अनागत काल ग्रहण कहते हैं। जैसे आकाश का निर्मल ा, पर्वतों की श्यामता, बिजली सहित

मेघ, बादलों की भरी हुई गम्भीर गर्जना, वृष्टि के अनुकूल प्रशस्त हवा, सन्ध्या का तेजसहित स्निग्ध ल पना और वारुण[1] मण्डल माहेन्द्र[2] मण्डल आदि में होने वाले वृष्टि के उत्पादक प्रशस्त चिह्नों को देख कर किसी ने अनुमान किया कि इस स्थान पर अनागत (भविष्यत्) काल में अच्छी वृष्टि होगी।

इसी प्रकार पूर्वोक्त चिह्नों से विपरीत चिह्नों को देखने से भी तीनों काल का अनुमान किया जाता है, यथा—

अतीत काल ग्रहण— जैसे ग्रामान्तर जाते हुए किसी पुरुष ने रास्ते में तृण रहित भूमि, धान्य के समूह नहीं निपजे हुए, कुण्ड सरोवर नदी बावड़ी तालाब आदि सूखे हुए, और बाग बगीचे कुम्हलाये हुए देख कर अनुमान किया कि यहां अतीत काल में वृष्टि नहीं हुई है।

१ वारुण मण्डल के ७ नक्षत्र- १ आर्द्रा. २ अश्लेषा ३ उत्तराभाद्रपद. ४ रेवती. ५ शतभिषग्. ६ पूर्वाषाढ़ा ७ मूल।

२ माहेन्द्र मण्डल के ७ नक्षत्र— १ ज्येष्ठा २ अनुराधा ३ रोहिणी ४ धनिष्ठा ५ श्रवण ६ अभिजित् ७ उत्तराषाढ़ा।

वर्त्तमान काल ग्रहण– जैसे कहीं गोचरी गये हुए किसी मुनिराज ने वहां दातार थोड़े, भाव भक्ति नहीं, भात पानी का न मि ा, इत्यादि देख कर अनुमान किया कि यहां पर दुष्काल है।

अनागत काल ग्रहण– जैसे दिशा का धुँधलापन, तेजरहितरुक्ष सन्ध्या, वृष्टि के प्रतिकूल नैर्ऋत कोण की अप्रशस्त हवा और अग्निमण्डल[1] वा म ल[2] आदि में होने वाले चिह्न' इत्यादि देखकर किसी ने अनुमान किया कि यहां अनागत काल में वृष्टि यथायोग्य नहीं होगी।

३ उपमा प्रमाण–

जिस सदृशता से उपमेय (पदार्थ) का ज्ञान हो उस को उपमा प्रमाण कहते हैं। इस के दो भेद हैं– साधर्म्योपनीत और वैधर्म्योपनीत।

साधर्म्योपनीत–साधर्म्य (समानधर्मता) से उपनय है जिस में उस को साधर्म्योपनीत कहते हैं।

---

१ अग्निमण्डल के ७ नक्षत्र– १ कृत्तिका. २ भरणी. ३ पुष्य. ४ विशाखा. ५ पूर्वाफाल्गुनी ६ पूर्वाभाद्रपद ७ मघा।

२ वायुमण्डल के ७ नक्षत्र– १ मृगशिर २ पुनर्वसु. ३ अश्विनी ४ हस्त ५ चित्रा ६ स्वाती ७ उत्तराफाल्गुनी।

इ के तीन भेद हैं– किञ्चित्साधर्म्योपनीत, प्रायःसाध-र्म्योपनीत और सर्वसाधर्म्योपनीत।

किञ्चित्साधर्म्योपनीत– जिस में थोड़े अंश का साधर्म्य हो, जैसे– जैसा मेरु है वैसा सरसों है और जैसा सरसों है वैसा ही मेरु है, अर्थात् इन दोनों में गोलपन का साधर्म्य है। तथा जैसा स द्र है वैसा ही गोष्पद (पानीयु गोखुरप्रमाण क्षेत्र) है और सा गोष्पद है वैसा ही समुद्र है, र्थात् इन दोनों में जलपूर्णत्व का साधर्म्य है। तथा जैसा सूर्य है वैसा ही द्योत (गिया) है और जैसा खद्योत है वैसा ही र्य है, र्थात् इन दोनों में प्रकाशपने का साध-र्म्य है। तथा जैसा चन्द्र है वैसा ही कु द (चन्द्र-विकाशी कमल) है और जैसा कुमुद है वैसा ही चन्द्र है, र्थात् इन दोनों में आह्लादकत्व का साधर्म्य है।

प्रायःसाधर्म्योपनीत– जिस में प्रायः बहुत से अंशों का साधर्म्य हो, जैसे– जैसी गौ है वैसा ही गवय (रोझ) है और जैसा गवय है वैसी ही गौ है र्थात् इन दोनों में खुर ककुद (स्कन्ध) आकृति और पूंछ दि बहुत अंशों का साधर्म्य है, परन्तु विशेष यह है कि गौ के कम्बल होता है, जो गले में

लंबा सा चर्म लटकता रहता है और गवय का गला गोल होता है।

सर्वसाधर्म्योपनीत- जिस में सर्वथा साधर्म्य हो। ऐसी सर्वसाधर्म्योपनीत वस्तु जगत् में कोई भी नहीं है, तथापि भव्य जीवों को समझाने के लिए शा॰ कार सर्वसाधर्म्य दिखाते हैं- जैसे तीर्थ ॰र तीर्थङ्कर जैसे अर्थात् सर्वोत्तम तीर्थ प्रवर्त्तनादि कार्य तीर्थङ्कर ही करते हैं। तथा चक्रवर्त्ती चक्रवर्त्ती जैसे, बलदेव बलदेव जैसे, वा देव वा देव जैसे और साधु साधु जैसे।

वैधर्म्योपनीत—

वैधर्म्य से उपनय है जिस में उसको वैधर्म्योपनीत कहते हैं। इस के भी तीन भेद हैं - किञ्चिद्वैधर्म्योपनीत, प्रायोवैधर्म्योपनीत और सर्ववैधर्म्योपनीत।

किञ्चिद्वैधर्म्योपनीत- जिस में किञ्चिन्मात्र

१ यहां साधर्म्य दृष्टान्त अच्छी वस्तु की अपेक्षा से कहा गया है। वास्तव में तो जहां साधन की सत्ता द्वारा साध्य की सत्ता बतायी जावे वही साधर्म्य गिना जाता है, जैसे पर्वत अग्नि वाला है धूम वाला होने से, जो धूम वाला होता है वह अग्निवाला होता है, जैसे रसोई घर। यहां रसोईघर का दृष्टान्त साधर्म्योपनीत है।

धर्म्य हो ; जैसे – " जहा सामलेरो न तहा बा · लेरो, जहा बाहुलेरो न तहा सामलेरो " अर्थात् जैसा वला गाय का बछड़ा शावलेय है, वैसा बहुला य का ब ा बाहुलेय नहीं है। इन दोनों में शेष धर्मो की ़ल्यता है, किन्तु सिर्फ भिन्न निमित्त जन्मादि का वैधर्म्य है।

प्रायोवैधर्म्योपनीत – जिस में प्रायः करके वैधर्म्य हो। जैसे– "जहा वायसो न तहा पायसो, जहा पायसो न तहा वायसो" अर्थात्– जैसा वायस (कौवा) है वैसा पायस (खीर) नहीं है और जैसा पायस है वैसा वायस नहीं है। इन दोनों में सिर्फ इन के नाम में आये हुए दो वर्णों का साधर्म्य है, परन्तु सचेतन अचेतन पना आदि वैध [1] बहुत है।

सर्ववैधर्म्योपनीत – जिस में सर्वथा वैधर्म्य हो। ऐसी सर्व वैधर्म्योपनीत वस्तु जगत् में कोई भी नहीं है, परन्तु भव्य जीवों को समझाने के लिए शा कार स धर्म्य दिखाते हैं , जैसे– नीचने नीच जैसा

---

१ इस दृष्टान्त में वैधर्म्य नहीं है, किन्तु साधर्म्य है, परन्तु प्रथम कथन (अच्छी वस्तु का कथन) की अपेक्षा वैधर्म्य पाया जाता है, क्योंकि यहां पर साधर्म्य वैधर्म्य का दृष्टान्त अच्छी और

किया, दासने दास जैसा किया, कौवेने कौवे जै किया, कुत्तेने कुत्ते जैसा किया, और प्राणीने प्राणी जैसा किया।

अथ प्रकारान्तर से उपमा ण के चार भेद दिखाते हैं--१सत् (छती) वस्तु को सत् (छती) उपमा, २सत् (छती) वस्तु को असत् (अछती) उपमा, ३अ-सत् (अछती) वस्तु को सत् (छती) उप और ४अ-सत् (अछती) वस्तु को असत् (अछती) उपमा।

१छती वस्तु को छती उपमा- जैसे तीर्थङ्कर भग-वान का हृदय नगर के कपाट के सदृश और श्रीवत्स के चिह्न से अङ्कित है, भुजाएं नगर की अर्गला (भोगल) के सदृश है और शब्द दुन्दुभि तथा मेघ गर्जना के समान गम्भीर है।

२छती वस्तु को अछती उपमा- जैसे नारक तिर्यञ्च मनुष्य और देव, इन का आयुष तो छता है

बुरी वस्तु को अपेक्षा करके ही कहा गया है। वास्तव में तो जहां साध्य के अभाव द्वारा साधन का अभाव बताया जावे, वही वैधर्म्य गिना जाता हैं, जैसे- यह पर्वत अग्निवाला है, धूम वाला होने से; जो अग्निवाला नहीं होता है, वह धूमवाला नहीं होता, जैसे जलहृद (तालाब)। यहां तालाब का दृष्टान्त वैधर्म्य है।

इ को अछती पल्योपम सागरोपम की उपमा देना।

३अछती वस्तु को छती उपमा-- जैसे वृ के जीर्ण पत्र को गिरते हुएं देख कर किशलय (कोंपल) का हँसना, यथा—

दोहे.

पान झड़न्ता देख कर, हंसी कोंपलियाँ।
मोय बीती तोय बीतसी, धीरी बापड़ियाँ ॥१॥
पान झड़न्तो इम कहे, न तरवर! वनराय!।
अब के बिछड़े कब मिलें? दूर पड़ेंगे जाय ॥२॥
तब तरवर उत्तर दिया, नो पत्र! इक बात।
इस घर याही रीत है, इक आवत इक जात ॥३॥
नहीं पत्र उठ बोलिया, नहीं तरु उत्तर दिराय।
वीर वखानी ओपमा, अनुयोग द्वार के माय ॥४॥

४अछती वस्तु को अछती उपमा- जैसे गधे के सींग ससा (शशले) के सींग जैसे हैं और ससा के सींग गधे के सींग जैसे हैं।

४ आगम प्रमाण—

जिस के द्वारा जीवादि पदार्थ समस्त प्रकार जाने जावें, उस को आगम प्रमाण कहते हैं। इस के दो भेद हैं- लौकिक आगम और लोकोत्तर आगम।

लौकिक आगम–जो ये प्रत्यक्ष अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों के स्वच्छन्द बुद्धि और मति से कल्पित (बनाये ए) हैं, वे इस प्रकार हैं–१ भारत, २ रामायण, ३ भीमासुरुक्ख, ४ कौटिल्य (शा), ५ शकट भद्रिका, ६ खोड (घोटक) मुख, ७ कार्पासिक, ८ नागसूक्ष्म, ९ कनकसप्तति, १० वैशेषिक, ११ बुद्धवचन, १२ त्रैराशिक, १३ कापिलिक, १४ लोकायत, १५ षष्ठितन्त्र, १६ माठर, १७ पुराण, १८ व्याकरण, १९ भागवत, २० पातञ्जल, २१ पुष्यदैवत, २२ लेख, २३ गणित, २४ शकुनिरुत, २५ नाटक अथवा बहत्तर कलाएं, और २६ चारों वेद अङ्ग उपाङ्ग सहित।

लोकोत्तर आगम–जो ये केवल ज्ञान केवल दर्शन के धारण करने वाले, तीन काल के ज्ञाता, तीनों लोक द्वारा वन्दित महित और पूजित, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी अरिहन्त भगवान द्वारा प्रणीत (रचे हुए) आचार्य की पेटी समान जो द्वादशाङ्ग (बारह अङ्ग)। वे इस प्रकार हैं–१ आचाराङ्ग, २ सूत्रकृताङ्ग, ३ स्थानाङ्ग, ४ समवायाङ्ग, ५ भगवत्यङ्ग (विवाहपन्नत्ती), ६ ज्ञाताधर्मकथाङ्ग, ७ उपासकदशाङ्ग, ८ अन्तकृद्दशाङ्ग, ९ अनुत्तरोपपातिकदशाङ्ग, १० प्रश्नव्याकरणदशाङ्ग, ११ विपाकश्रुताङ्ग और १२ दृष्टिवाद।

इस लोकोत्तर ागम के तीन भेद भी होते हैं, वे इ प्रकार हैं– १सूत्रागम, २ र्थागम और ३तदुभयागम। सूत्रागम– "सूत्रयति वेष्टयति अल्पाक्षराणि ब र्थानीति सूत्रम्।" अर्थ– जिस के द्वारा बहुत अर्थ थोड़े न्नरों में बेढ़ा (वींटा) जावे उस को सूत्र कहते हैं। थवा

" त्तं गणहररइयं, तहेव पत्तेयबुद्धरइयं च ।
त्त केवलिरइयं, अभिन्नदसपुव्विरइयं च ॥ १ ॥"

अर्थ– गणधर भगवान के रचे हुए, प्रत्येक बुद्ध निराज के रचे हुए, केवली भगवान के रचे ए और चौदहपूर्वी से लेकर यावत् संपूर्ण दशपूर्वी के रचे ए को सूत्र कहते हैं। ऐसे सूत्र रूप आगम को सूत्रागम कहते हैं। २अर्थागम– पूर्वोक्त सूत्र के अर्थरूप ागम को र्थागम कहते हैं। ३तदुभयागम– पूर्वोक्त सूत्र और उसका अर्थ, इन दोनों रूप आगम को तदुभयागम कहते हैं।

इसी लोकोत्तर आगम के दूसरी तरह से भी तीन भेद होते हैं, वे इस प्रकार हैं– १अत्तागम (आत्मागम) २ णंतरागम (अनन्तरागम) और ३परम्परागम। तीर्थङ्करों के अर्थरूप आगम ात्मागम है और

गणधरों के सूत्ररूप आगम तो आत्मागम हैं और अर्थरूप आगम अनन्तरागम हैं। तथा गणधरों शिष्यों के सूत्ररूप आगम अनन्तरागम हैं और अर्थरूप आगम परम्परागम हैं। इस के बाद इन के शिष्य प्रशिष्यों के सूत्ररूप आगम और अर्थरूप आगम ये दोनों ही परम्परागम हैं किन्तु आत्मागम और अनन्तरागम नहीं हैं।

१० गुणगुणी द्वार.

ज्ञानादि को गुण कहते हैं, उन ज्ञानादि गुणों को धारण करने वाले को गुणी कहते हैं।

११ सामान्य विशेष द्वार.

जो संक्षेप से वस्तु का वर्णन किया जावे उस को सामान्य कहते हैं और जिस के द्वारा वस्तु का भिन्न भिन्न कर के विस्तार किया जावे उस को विशेष कहते हैं। इस सामान्य विशेष को दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करते हैं, जैसे- (१) सामान्य से द्रव्य और विशेष से द्रव्य के दो भेद होते हैं- १ जीव द्रव्य और २ अजीव द्रव्य।

(२) मान्य से जीव द्रव्य और विशेष से दो भेद–
१संसारी और २सिद्ध। (३) सामान्य से सिद्ध और
विशेष से दो प्रकार– १अनन्तर सिद्ध और २पर र
सिद्ध। (४) सामान्य से अनन्तर सिद्ध और विशेष
से पन्द्रह भेद– १ तीर्थ सिद्ध, २ तीर्थ सिद्ध, ३ ती-
र्थंकर सिद्ध, ४ अतीर्थंकर सिद्ध, ५ स्वय बुद्ध सिद्ध,
६ प्रत्येकबुद्ध सिद्ध, ७ बुद्धबोधित सिद्ध, ८ स्त्रीलिङ्ग
सिद्ध, ९ पुरुषलिङ्ग सिद्ध, १० नपुंसकलिङ्ग सिद्ध, ११
स्वलिङ्ग सिद्ध, १२ अन्यलिङ्ग सिद्ध, १३ गृहिलिङ्ग सिद्ध,
१४ एक सिद्ध और १५ अनेक सिद्ध। (५) सामान्य
पर सिद्ध और विशेष से अनेक भेद– १ अप-
थम मय सिद्ध, २ द्विस सिद्ध, ३ त्रिसमय सिद्ध,
४।५।६।७।८।९।१० समय सिद्ध यावत् ११ संख्या-
त मय सिद्ध, १२ असंख्यात समय सिद्ध और १३
नन्त मय सिद्ध।

(६) सामान्य से संसारी जीव और विशेष से
चार प्रकार– १ नारक, २ तिर्यञ्च, ३ मनुष्य और
४ देव। (७) सामान्य से नारक और विशेष से सात
प्रकार– १ रत्नप्रभा नारक, २ शर्कराप्रभा नारक, ३ वा-
लुका प्रभा नारक, ४ पङ्कप्रभा नारक, ५ धूमप्रभा नारक,

६ तमःप्रभा नारक और ७ तमस्तमाप्रभा नारक। (८) न्य से रत्नप्रभा नारक और विशेष से दो प्र र- पर्याप्त नारक और अपर्याप्त नारक। इसी प्रकार प्त और अपर्याप्त' इन दो दो भेदों से शेष छहों (१४) पृथिवियों के नारकों के भेद जान लेना चाहिये।

(१५) सा न्य से तिर्यञ्च और विशेष से पांच प्रकार- १ एकेन्द्रि, २ द्वीन्द्रिय, ३ त्रीन्द्रिय, ४ चतुरिन्द्रिय और ५ पञ्चेन्द्रिय। (१६) सामान्य से एकेन्द्रिय और विशेष से पांच प्रकार- १ पृथिवीकाय, २ प्का- य, ३ तेजस्काय, ४ वायुकाय और ५ वनस्पति य। (१७) सामान्य से पृथिवीकाय और विशेष से दो प्रकार- १ सूक्ष्मपृ० और २ बादरपृ० (१८) सा न्य से सूक्ष्म पृथ्वीकाय और विशेष से दो प्रकार- १ पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकाय और २ अ प्त सूक्ष्म पृथ्वीकाय। (१९) सामान्य से बादर पृथ्वीकाय और विशेष से दो प्रकार- १ पर्याप्त बादर पृथ्वीकाय और २ अपर्याप्त बादर पृथ्वीकाय। इसी प्रकार (२२) अप्काय, (२५) तेजस्काय, (२८) वायुकाय और (३१) वनस्पतिकाय के भेद जान लेवें।

३२ सामान्य से द्वीन्द्रिय और विशेष से दो

प्रकार हैं- १ पर्याप्त द्वीन्द्रिय और २ अपर्याप्त द्वीन्द्रिय। इसी प्रकार (३३) त्रीन्द्रिय, (३४) चतुरिन्द्रिय और (३५) पञ्चेन्द्रिय आदि के सामान्य विशेष भेद न लेवें।

१२ ज्ञेय-ज्ञान-ज्ञानी द्वार

ज्ञेय— जानने योग्य पदार्थ (घटपटादि वस्तु) को ज्ञेय कहते हैं। ज्ञान- जो संशय विपर्यय और नध्यवसाय, इन तीनों दोषों से रहित और १ कारण २ रूप तथा ३ भेदाभेद, इन तीनों से सहित पदार्थ की सम्यक् प्रतीति हो उसको ज्ञान कहते हैं। ानी - जो इसी न द्वारा पदार्थ को जानने वाला चेतन है उस को ज्ञानी कहते हैं।

ब ध्येय ध्यान ध्यानी पर त्रिभङ्गी कहते हैं- ध्येय- ध्यान करने योग्य पदार्थ को ध्येय कहते हैं। ध्यान- चित्त की एकाग्रता- जो अन्तर्मुहूर्त्त मात्र किसी ध्येय पदार्थ पर लगी रहती है- उस को ध्यान कहते हैं। ध्यानी- किसी पदार्थ का ध्यान करने वाले चेतन को ध्यानी कहते हैं।

१३ उत्पाद-व्यय ध्रुव-द्वार.

वस्तु में नई पर्याय के उत्पन्न होने को उत्पाद, पूर्व पर्याय के नष्ट होने को व्यय और द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा वस्तु के निरन्तर रूप से रहने को ध्रुव कहते हैं।

१४ आधाराधेय द्वार.

जिस पर वस्तु ठहरे उसको आधार कहते हैं, जैसे आकाश। ठहरने योग्य वस्तु को आधेय कहते हैं, जैसे पांच द्रव्य-- १ धर्म २ अधर्म ३ जीव ४ पुद्गल और ५ काल। इन आधाराधेय पर आठ प्रकार की लोकस्थिति को दिखाते हैं—

जैसे सब द्रव्यों का आधार आकाश है और आकाश पर वायु१, वायु पर उदधि२, उदधि पर पृथिवी३, पृथिवी पर त्रसस्थावर प्राणी४, अजीव जीवों के आश्रित ५, जीव कर्मों के आश्रित ६, अजीव जीवों से संगृहीत ७ और जीव कर्मों से संगृहीत।

१५ आविर्भाव-तिरोभाव द्वार.

कार्य का नजदीक में प्रकट होना उस को आविर्भाव और दूर में प्रकट होना उस को तिरोभाव कहते हैं। इ पर दृष्टान्त कहते हैं– जैसे भव्य जीव में मो का तिरोभाव (दूरपना) है और सम्यग्दृष्टि में मो का आविर्भाव (नजदीकपना) है। सम्यग्दृष्टि में मो का तिरोभाव और साधुपन में मोक्ष का ाविर्भाव है। साधुपन में मो का तिरोभाव और पकश्रेणि में मोक्ष का आविर्भाव है। क्षपकश्रेणि में मो तिरोभाव और सयोगी केवली में मो का ाविर्भाव है। सयोगी केवली में मो का तिरोभाव ौर योगी केवली में मोक्ष का आविर्भाव है। थवा ग में घृत का तिरोभाव और गाय के स्तनों में घृत का आविर्भाव है। गाय के स्तनों में त का तिरोभाव और दूध में घृत का आविर्भाव है। दूध में घृत का तिरोभाव और दही में घृत का ाविर्भाव है। दही में घृत का तिरोभाव और मक न में घृत का आविर्भाव है॥

१६ मुख्यता गोणता द्वार.

अग्रेसर (आगेवानी) पने को मुख्यता कहते हैं। और जो अग्रेसर के पेटे में हो उस को गोणता कहते हैं। इन पर दृष्टान्त कहते हैं- जैसे उत्तराध्ययन सूत्र के दसवें अध्ययन में वीरप्रभु ने "समयं गोयमा! मा पमायए" ऐसा उपदेश जो श्री गौतमस्वामी को दिया उसमें मुख्यता श्रीगौतमस्वामी की है और गोणता सकल चतुर्विध संघ की है।

१७ उत्सर्गापवाद द्वार.

उत्कृष्ट क्रिया का करना उसको उत्सर्ग कहते हैं, जैसे तीन गुप्ति का गोपना अथवा जिनकल्पी का आचार। उत्कृष्ट क्रिया को अवलम्बन (सहायता) देना उस का नाम अपवाद है, जैसे पांच समितियों में प्रवर्त्तना अथवा स्थविरकल्पी का आचार।

अब उत्सर्ग और अपवाद की षड्भङ्गी दिखाते हैं- १ उत्सर्गोत्सर्ग, २ उत्सर्ग, ३ उत्सर्गापवाद, ४ अपवादोत्सर्ग, ५ अपवाद और ६ अपवादापवाद।

१ उत्सर्गोत्सर्ग– जो उत्कृष्ट से उत्कृष्ट क्रिया की जावे, जैसे गज   माल मुनि भिक्षु की बारहवीं प्रतिमा को अङ्गीकार कर श्मशान भूमि में खड़े रहे और जो सोमिल ब्रा ण ने आकर उपसर्ग किया उस को सम्यक् प्रकार से सहन किया। उस को उत्सर्गोत्सर्ग कहते हैं।

२ उत्सर्ग– जो तीन गुप्ति का धारण करना उस को उत्सर्ग कहते हैं।

३ उत्सर्गापवाद– उत्कृष्ट क्रिया को करते हुए उस के सहायक रूप अपवाद का सेवन करना उस को उत्सर्गापवाद कहते हैं, जैसे किसी नि ने चोविहार (चउव्विहाहार– चतुर्विधाऽऽहार) उपवास किया हो मगर परिट्ठावणिया (सब के आहार कर चुकने पर बचा हुआ) आहार करना पड़े।

४ अपवादोत्सर्ग– कारण वश अपवाद को सेवते ए भी हेयोपादेय विचार कर जो उत्कृष्ट क्रिया को

---

१ यह आहार सिर्फ एक उपवास वाले को ही दिया जाता है; किन्तु एक उपवास से अधिक–बेला– तेलादिक तपस्या वाले को नहीं कल्पता।

सेवन करे उस को अपवादोत्सर्ग कहते हैं, जैसे धर्म-रुचि मुनि कड़वे तुम्बे के आहार को परठवने के लिए गये वहां पर उस का एक बिन्दु भी परठवने पर ब तसी कीड़ियों की अजयणा (अयतना) देख कर उस आहार को स्वयं सेवन कर के वहीं संथारा (अनशन व्रत) कर लिया।

५ अपवाद– जो पांच समिति में प्रवृत्ति की जावे उस को अपवाद कहते हैं।

६ अपवादापवाद– जो अपवाद में भी कारण वश अपवाद का सेवन करना पड़े उस को अपवादापवाद कहते हैं, जैसे कोई मुनिराज गोचरी गये और कारण वश वहां गृहस्थ के घर में बैठना पड़े यह तो प-वाद और फिर विशेष कारण वश उसी स्थान पर बैठ कर आहार भी करना पड़े वह अपवादापवाद कहा जाता है।

१८ आत्म- द्वार.

जो चेतनालक्षणवाला हो उस को त्मा कहते हैं। इस के तीन भेद होते हैं– १ बा त्मा, २ अन्तरात्मा और ३ परमात्मा।

१ बा त्मा- जो राज्य ऋद्धि भण्डार आज्ञा (हुक्म) दास दासी इज्जत (गौरव) आदरू (प्रतिष्ठा) भाई भतीजा बेटा बेटी हाथी घोड़ा रथ पालखी धन धान्य वस्त्र आभूषण मकान हाट हवेली, इत्यादि बा सम्पदा में लीन रहे और इसी को अपनी कर माने उस को बा त्मा कहते हैं। यथा-

पुद्गल से रातो रहे, जाणे यही निधान।
तस लाभे लोभ्यो रहे, बहिरातम अभिधान ॥१॥

यह बाह्यात्मा पहले दूसरे और तीसरे गुण ान तक रहता है।

२ अन्तरात्मा- जो उपरोक्त बाह्य सम्पदा से उदासीन रहे और विरक्त भाव से सेवन करे तथा त्मसत्ता को पहिचान कर स्वस्वभाव में लीन रहे और ज्ञानादि निजगुण से प्रीति करे उस को अन्तरात्मा कहते हैं। यथा-

पुद्गल खल संगी परे सेवे अवसर देख।
तनु असक्य जिम लाकड़ी ज्ञानदृष्टि कर देख ॥१॥
पुद्गल भाव रुचे नहीं, ताते रहे उदास।
सो अन्तर आतम लहे, परमातम परकास ॥२॥

यह अन्तरात्मा चौथे से बारहवें गुणस्थान तक रहता है।

३ परमात्मा– जो उत्कृष्ट आत्मा अर्थात् सकल उपाधि (क्लिष्टकर्म) से रहित और केवल–ज्ञान केवल–दर्शन आदि सम्पूर्ण आत्मगुणों से विभूषित हो उस को परमात्मा कहते हैं। इस के दो भेद हैं– १ द्रव्य परमात्मा और २ भाव परमात्मा। १ द्रव्य-परमात्मा तो समभिरूढ नय के अभिप्राय से तेरहवें चौदहवें गुणस्थान पर रहे हुए केवली भगवान को कहते हैं और २ भाव–परमात्मा एवंभूत नय के अभिप्राय से जो आठों ही कर्मों से रहित आठ गुणों से विभूषित लोक के अग्रभाग में विराजमान और साद्यनन्त खमय सिद्ध भगवान् को कहते हैं। यथा–

बहिरातम तज आतमा, अन्तर आतम रूप।
परमातम ने ध्यावतां, प्रगटे सिद्ध स्वरूप ॥१॥

दूसरी तरह से भी आत्मा के तीन भेद होते हैं– १ स्वात्मा, २ परात्मा और ३ परमात्मा। यथा—

स्वआतम को दमन कर, पर आतम को चीन।
परमातम को भजन कर, सोही मत परवीन ॥१॥

१९ ध्यान (४) द्वार

ध्यान– जो अन्तर्मुहूर्त तक चित्तवृत्ति को एक वस्तु पर लगाना उस को ध्यान कहते हैं। इस के

चार भेद होते हैं- १ आर्त्तध्यान, २ रौद्रध्यान, ३ धर्मध्यान और ४ शुक्लध्यान। इन चारों ही ध्यानों का विशेष वर्णन भगवती सूत्र उववाई सूत्र आदि अनेक ग्रन्थों से जान लेना चाहिये।

अब प्रकारान्तर से ध्यान के चार भेद कहते हैं- १ पदस्थ-ध्यान, २ पिण्डस्थ-ध्यान, ३ रूपस्थ-ध्यान और ४ रूपातीत-ध्यान।

१पदस्थ-ध्यान— अरिहन्तादिक पांच परमेष्ठियों के गुणों का स्मरण कर के चित्त में उन का ध्यान करना उस को पदस्थ ध्यान कहते हैं।

२ पिण्डस्थ-ध्यान—पिण्ड याने अपने शरीर में रही हुई अपनी आत्मा में अरिहन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु के गुणों की चिन्तवना करना, थवा गुणी के गुणों में उपयोग की एकता करना उस को पिण्डस्थ ध्यान कहते हैं।

३रूपस्थ-ध्यान—जो रूप में रहा हुआ भी मेरा जीव अरूपी और अनन्तगुणी है ऐसी चिन्तवना करना, तथा जो वस्तु का स्वरूप अतिशयावलम्बी होने बाद आत्मा के रूप की एकता चिन्तवना उस को रूपस्थ ध्यान कहते हैं। इन तीनों ध्यानों का समावेश पूर्वोक्त धर्म-ध्यान में होता है।

४ रूपातीत- ध्यान— निरञ्जन निर्मल संकल्प विकल्प रहित अभेद एक शुद्ध सत्तारूप चिदानन्द तत्त्वामृत असङ्ग अखण्ड अनन्त गुण-पर्याय- शाली आत्मस्वरूप के चिन्तवने को रूपातीत ध्यान कहते हैं। इस ध्यान में गुणस्थान, मार्गणा, नय, प्रमाण, निक्षेप, मति, श्रुत आदि सब क्षयोपशम भाव छूट जाते हैं केवल सिद्ध के एक मूलगुण का ही चिन्तवन रहता है इस लिए यह ध्यान शुक्ल ध्यान के अन्तर्गत हो जाता है ॥

२० अनुयोग (४) द्वार

अनुयोग-जो महान् अर्थ का अणु-(लघु) सूत्र के साथ योग- सम्बन्ध हो, अ । अनुरूप योग हो, अथवा अर्थ का सूत्र के साथ अनुकूल सम्बन्ध हो, अथवा सूत्र अर्थ का व्याख्यान, अथवा सूत्र का विस्तार से अर्थ प्रतिपादन करना उसको अनुयोग कहते हैं। इस के चार भेद हैं- १ चरणकरणानुयोग, २ धर्म-कथा (प्रथमा) नुयोग, ३गणिता (काला) नुयोग और ४ द्रव्यानुयोग।

१ चरणकरणानुयोग- आचार वचन- जो आ-

चाराङ्गादि कालिक-श्रुत अर्थात् साधु निराज का पंच महाव्रत, श्रावक के बारह व्रत, अगार धर्म और अणगार धर्म आदि का जो वर्णन हो उस को चरण करणानुयोग कहते हैं। इस अनुयोग में नीति की प्रधानता है। इस का फल प्रमाद की निवृत्ति और प्रमाद की प्राप्ति है॥

२ धर्मकथा (प्रथमा) नुयोग– आख्यायिकावचन– जो ऋषिभाषित शास्त्र— ज्ञाताधर्मकथाङ्ग आदि, और ग्रन्थ– त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र तथा मोक्ष गामी जीवों का भूत भविष्यत् वर्त्तमान काल सम्बन्धी वर्णन हो उस को धर्मकथानुयोग कहते हैं। इस अनुयोग में अलङ्कार शास्त्र की प्रधानता है। इस का फल विषय कषाय की निवृत्ति और उपशम वैराग्य की प्राप्ति है॥

३ गणिता (काला) नुयोग– संख्याशा वचन–जो सूर्यप्रज्ञप्ति आदि सूत्र तथा नरक तिर्यञ्च मनुष्य और देवों के सुख दुःख अवगाहना आयुष्य आदि का वर्णन हो, थवा द्वीप समुद्र आदि तीन लोक (स्वर्ग-मर्त्य पाताल) का वर्णन हो, अथवा गाङ्गेय भङ्ग आदि भङ्ग जाल का वर्णन हो उस को गणितानुयोग कहते हैं। इस अनुयोग में परिक्रमाष्टक (गणित शास्त्र)

की प्रधानता है। इस का फल चित्तव्यग्रता की निवृत्ति और चित्त की एकाग्रता की प्राप्ति है।

४ द्रव्यानुयोग– दृष्टिवाद वचन– जो षड् द्रव्य का विचार, सात नय, नव पदार्थ, पञ्चास्तिकाय और प्रमाण आदि निश्चय नयों का कथन है उस को द्रव्यानुयोग कहते हैं। इस में न्याय शा की प्रधानता है। इस का फल संशयादि दोषों की निवृत्ति और सम्यक्त्व की निर्मलता की प्राप्ति है॥

२१ जागरणा (३) द्वार

जागरणा– निद्रा के क्षय होने पर जो जागृत होना अर्थात् जागना उस को जागरणा कहते हैं। इस के तीन भेद हैं– १ धर्म जागरणा, २ अधर्म जागरणा और ३ टुम्ब जागरणा।

१ धर्म जागरणा– धर्म चिन्तन के लिए जागना उस को धर्म जागरणा कहते हैं। इस के तीन भेद हैं– १ बुद्ध जागरणा, २ अबुद्ध जागरणा और ३ दक्ष जागरणा। १ बुद्ध जागरणा– जो अरिहन्त भगवान, उत्पन्न हुआ केवलज्ञान और केवल दर्शन को धारण करने वाले यावत् सब भाव को जानने वाले तथा सब पदार्थ को देखने वाले और दूर हुई है ज्ञान रूप

निद्रा जिन की ऐसे बुद्ध (केवल ज्ञानी) भगवान् की जो जागरणा (प्रबोध) है उस को बुद्ध जागरणा कहते हैं। २ अबुद्ध जागरणा— अनगार भगवान ईर्या समिति वाले यावत् गुप्त चारी जो ये अबुद्ध अर्थात् केवल ज्ञान के अभाव से तथा यथासम्भव छद्मस्थ के शेष चार ज्ञान के होने से बुद्धसदृश हैं, इन छद्मस्थ ज्ञान-वाले अबुद्धों (बुद्धसदृशों) की जो जागरणा है उस को अबुद्ध जागरणा कहते हैं। ३ जागरणा-- जो ये श्रमणोपासक अभि जीवाजीव यावत् श्रावक को पालते ए विचरते हैं, इन दक्षों की जो जागरणा है उस को दक्ष जागरणा कहते हैं। इस का फल कर्मों की निर्जरा होना है।

२ धर्म जागरणा— अधर्म चिन्तन के लिए की ई जागरणा को अधर्म जागरणा कहते हैं। इस का फल महान् संसार की वृद्धि है।

३ टुम्ब जागरणा— कुटुम्ब चिन्तन के लिए की हुई जागरणा को कुटुम्ब जागरणा कहते हैं। इस का भी फल संसार की वृद्धि है।

॥ इति इक्कीस द्वार संपूर्ण ॥

---

१ यह नञ् सदृशता का वाचक है इसलिए अबुद्ध शब्द का अर्थ 'बुद्धसदृश' ऐसा होगा।

सम्यग्दृष्टि के लक्षण—

नय-भंग-पमाणेहिं, जो अप्पा सायवायभावेणं।
जाणइ मोक्खसरूवं, सम्मद्दिट्ठी उ सो नेओ॥१॥

अर्थ- जो जीव नयों से भंगों से प्रमाणों से और स्याद्वादपद्धति से मोक्ष के स्वरूप को जाने, वह सम्यग्दृष्टि कहलाता है ॥१॥

ग्रन्थ प्रशस्तिः—

दोहा.

नय निक्षेप प्रमाण को संग्रह अति ख कार।
कीना बीकानेर में आनन्द हिरदे धार ॥ १॥
जिन आगम को देखकर, और ग्रन्थ आधार।
यथामति संग्रह कियो, स्वपर को हितकार ॥२॥
दृष्टिदोष परमाद से, भूलचूक रहि होय।
अरिहंत सिद्ध की साखसे, मिथ्या दुष्कृत मोय॥३॥
न्यूनाधिक विपरीतता, यत् किञ्चित् दरसाय।
सो सज्जन सुध भावला, जलदी देहु बताय॥४॥
अभिनिवेश म्हारे नहीं, नहीं है खेंचाताण।
कृतज्ञ हूँ मैं तेहनो, ततखिण करूँ प्रमाण ॥ ५॥

पंच परमेष्ठी को नमूं, रहुं जिन ाज्ञा लाल ।
श्रीजिनधर्म प्रसाद से, वरते मंगल माल ॥६॥

आन्तिम मङ्गलम् –

ब्राह्मी चन्दनबालिका भगवती राजीमती द्रौपदी,
कौशल्या च मृगावती च सुलसा सीता च भद्रा सती ।
कुन्ती शीलवती नलस्य दयिता चूला प्रभावत्यपि,
पद्मावत्यपि सुन्दरी दिनमुखे कुर्वन्तु वो मङ्गलम् । १ ॥

॥ इति नय-प्रमाण का थोकड़ा संपूर्ण ॥

श्रीरस्तु

Printed at the Sethia Jain Printing press
BIKANER 20—1—28, 3000